

ॐ

आत्म-चिन्तन



व धृष्यमोक्षो तुज्झत्येव-श्रीशाचाराणसूत्र
—तुम्हारा बंधन और मास तुम्हारे ही हाथ में है।



लेखक—

केशरीमल जैन



प्रकाशक—

अ ध्या त्म — प्रा य त न

शाजापुर [गवालियर]



प्रथमावृत्ति १५००]

[मूल्य तीन आने

इसी लेखक द्वारा

लिखित—

उद्धारक महावीर

श्री महावीर जयन्ती और निर्वाण के उत्सव पर
सर्व साधारण में वितरण करने के लिये
आधुनिक ढंग से लिखी हुई सुन्दर पुस्तक
मूल्य एक प्रति, आधा आना सौ प्रति, तीन रुपये
पता—श्री महावीर प्रेम व्याकरण (राजपूताना)

जैन-ज्योति

समाज दशा-दिग्दर्शक सरस गद्य-काव्य
मूल्य एक प्रति पोस्टेज सहित एक आना
पता—अध्यात्म-आयतन, राजापुर (ग्वानियर)

अनुवादित—

श्रीसूत्रकृत्नागसूत्र : श्रीआचारागसूत्र
[हिन्दी छायाअनुवाद]

मूल्य प्रत्येक की एक प्रति का छे आना
पता—श्री श्वे० स्था० जैन कॉमेन्स ऑफिस
६ भागवाड़ी, एम्बई न० २

कृतज्ञता-प्रकाश



सुप्रसिद्ध समाज-सेवक श्रीमान् अमोलकचन्द्रजी लोढ़ा ने गगदी स्था० जैन धीसध की श्रौर से इस पुस्तक पर ५१) रु० पुरस्कार तथा प्रकाशन के लिये जो सहायता देकर मुझे प्रोत्साहन देने के साथ ही लेखकों को इस प्रकार सम्मानित करने का समाज के सामने एक नवीन आदर्श रक्खा है, एतदर्थ मैं आपका और श्री सध का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ ।

—केशरीमल जैन

सूची

| | |
|---------------------------------|----|
| विषय | |
| निषेदन | २४ |
| आशीर्षचन | ४ |
| आत्मोन्नति के सिद्धान्त और नियम | ४ |
| रहो मत आत्मज्ञान से हीन | १ |
| विषय निर्देश | ६ |
| ध्यान | ७ |
| ध्यान के विषय | १८ |
| मंत्र जप | २१ |
| आनुपूर्वी | २८ |
| व्यनि-उच्चार | ३४ |
| अध्यात्म-पाठ | ४४ |
| सूत्र-सुक्ति | ४६ |
| | ४६ |

| | |
|---------------------|-------|
| विषय | पृष्ठ |
| परमानन्द स्तोत्र | ४६ |
| समभाव-पाठ | ५२ |
| मेरी भावना | ६१ |
| आत्म-अमरता | ६५ |
| चेतावनी | ६६ |
| अन्तरतर हे ! | ६७ |
| आत्मविचार | ६७ |
| आदर्श आचर | ६८ |
| आत्म जागरण | ६९ |
| नाम जपन | ७० |
| भाई मैं भगवान् | ७१ |
| विवेक सूत्र | ७२ |
| सामायिक-प्रतिप्रमण | ७४ |
| स्वाध्याय | ७७ |
| सत्संग | ७९ |
| भावना या आत्म-सूचना | ८१ |
| साधन का मम | ८६ |

निवेदन

सुख और दुःख ममत्व की अवस्थाएँ हैं। 'ममत्व' ही है, उस इनको भोगना पड़ता है। जिसका ज्ञान है उस इनके कारण को जानता है, उसको सुख दुःख ममत्व मान्य नहीं बात और न वह सुख में ही अपने आपका भुजा खेला है क्योंकि वह जानता है कि जो दुःख है, वह अपने कर्मों के ही फल है और जो सुख है वह स्वयंभूत है। तथा सुख का आसीन ही है, हमारी आत्मा में ही अन्तर्निहित है।

जो हमको नहीं समझते, वह अपने दुःख का दूर करने के लिये, सुख का प्राप्त करने के लिये बाहर ही भटकन फिरता है और समझने है कि कहीं बाहर न उन्हे सुख प्राप्त हो जायगा। पर सुख का—ममत्व और शासन सुख का—शोल तो आत्मा में है सुख की कुली आत्मज्ञान है, आत्म जागृति है, आत्मपक्ष की प्राप्ति है जिसको प्राप्त करने का मध्यम आत्मविज्ञान है।

काई भी कार्य, लौकिक हो या पारलौकिक हो, आत्म बल से ही सिद्ध होता है। अपने जीवन में पद पर अनुपम इसका अनुभव करता रहता है। अतएव, आत्म ज्ञान के लिये, आत्मबल जागृत करने के लिये अपने आ पके जानना और समझना अर्थात् आत्मचिन्तन करना आवश्यक है।

हमारे यहाँ आत्मचिन्तन अध्यात्म के साधन और विषय इतनी रुढ़ हो गई हैं कि वे मात्र परलोक के कल्याण के लिये ही समझी जाती हैं। यही कारण है कि वे आधुनिक तकशील व्यक्ति को रुचती नहीं—गमक में नहीं आती। जो हो पर उनका मूल मिथ्यात्व तो मथ्य ही है। यदि उनको मनोविज्ञान, तर्क और व्यावहारिकता की भूमिका पर लक्ष्य किया जाय तो वे आधुनिक विचारशैली के लिये भी उपयुक्त होकर लाभदायक हो सकती हैं।

ऐसी आवश्यकता ने ही मुझे इस विषय को इस प्रकार तैयार करने के लिये प्रेरित किया है।

मैं इस योग्य नहीं कि अध्यात्म जैसे गंभीर विषय पर कलम चला सकूँ या उपदेश दे सकूँ। तथापि इसका किया भाग तो महात्माजी के पद्यों का संग्रह ही होने के कारण और आन्तरिक भाग विषय को उपयोगी बनाने के लिये आवश्यक होने के कारण मैंने इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया है। मैंने विषय को रोचक तर्कमय व्यावहारिक

और उपयोगी बनाने का काफी प्रयत्न किया है। यदि पात्रों ने इससे अपने दैनिक जीवन में स्थान देकर लाभ उठाया तो मैं अपने परिश्रम का माधव समझूंगा।

यन्त्र है, उल्लाही मुनि श्री धनचन्द्रजी और श्रीमान् डा० दुर्गाशंकरजी नागा, सम्पादक—कल्पवृक्ष, त्रिनक लगा तार प्रोत्साहन देने पर मैं यह कार्य कर सका। श्री० धीरज छात्र भाई अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल और अमर्योदाम श्री० पद्मलालजी भट्टवरा रि० हस्तेक्षर शिक्षा विभाग ग्वालियर का मैं आभारी हूँ निःशेष कई तारिकक सूर नाई दी। प० सोमाचन्द्रजी भारिष्ठ, ग्वालियरी ने मुझे हम कार्य में जो सहयोग दिया है, वह सचन्यवाद में लीय है।

शतावधानी भारतभूषण प० मुनि श्रीरत्नचन्द्र और कविवर्य उपाध्याय प० मुनि श्रीधर्मचन्द्रजी अत्यन्त रम्य और अत्यन्त होत हुए भी आशीर्वचन दि देने का जो कष्ट उठाया है, उसका जिय मैं आपका अत्यन्त हनत हूँ।

लेद है मरी अनुपस्थिति और शीघ्रता के का पुस्तक में अनुष्ठित रह गई है आशा है विज्ञान वा ईद सुधार कर पढ़ेंगे। इति शम्।

जैन गुरुकुल, ग्वालियर
कार्तिकी पूर्णिमा
मगस १९३६

विनीत—
कशिमल जैन

आशीर्वचन



शतावधानी भारतभूषण प० श्रीरत्नचन्द्रजी महाराज
आर

कविवर्य उपाध्याय प० श्री अमरचन्द्रजी महाराज

‘आत्म चिन्तन’ । क्या ? अपना चिन्तन अपना मनन, अपना विचार—अर्थात् अपने आपको सोचना—मम भना । अखिल विश्व ब्रह्माण्ड में सबत्र अपना ही, आत्मा का ही आलोक फला हुआ है । हमारी ही—आत्मा की ही सत्ता, वह सत्ता है, जिससे कि विश्व का अणु अणु गति पा रहा है, जीवन पा रहा है । अगर यह न हो तो क्या हो ? उत्तर स्पष्ट है—‘०’ । पैगम्बर के बिना विश्व की समस्या शून्य बिन्दु के समकक्ष नहीं है, तो और क्या है ? कुछ भी नहीं ! अच्छा तो इतना प्रमुख होने हुए भी हमारी—चेतन्य की यह गिरी-पदी दशा क्यों ? यों कि हमने अपने आपको कभी शान्त, स्थिर भाव से चिन्तन

नहीं किया। धन-तन्हास से प्रवृत्ति के माया जाल को देखते रहते हैं मत्त-मत्त-विरत एकमात्र उसीका चिन्तन करने रहते हैं, दुनिया की भूल-भुलैया में हमने अपने आप को भुला दिया—विलकुल भुला दिया। अगर कभी एक बार भी ज़रा दीक रग रग से हम अपने चिन्तन कर लेते, होश सँभाल लें तो इस ससार मागर से देहा पार हो जाता।

हमारा परित्र आगम मार्गित्य ? हाँ, क्या है उसमें ? अथ से लेकर इति पश्च-न उसमें एक एक एकमात्र यह आत्म चिन्तन ही जो हमारा भरा हुआ है। आगम के अर्थ अथ-म-मात्रा भाषा में आत्मचिन्तन का विरह मेरी गभीर घोष गूँज रहा है। मनु महावीर का एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिसमें कि आत्मचिन्तन की मार्गोपाय मलक न मिल सकती हो। हाँ, कोई दमने वाला होना चाहिये। जे जग जायइ से सख जायइ—आचारंग आगम ही नहीं पूर्वाचार्यों का भी बही लक्ष्य रहता आच है। उनकी भी ज्ञानगंगा की पतित-पाथी अमल धवा धाराएँ इसी भूमिका पर प्रवाहित होनी रहनी हैं। उनका अर्थ वे अर्थ हैं जिनमें आध्यात्मिकता अपने असली रूप में पूषना के पथ पर चमक उठी है। अपना शान्ति मुनिहि तुह जो जायइ अण्णानु।

हर्ष है कि ध्यान भीतरी शताब्दी भी भारत, अपने
 रटानिज्जग आध्यात्मिक आग्रह को नहीं छोड़ रहा है। जहाँ
 राज अखिल विश्व भौतिकता के मगपान से उमस हो रहा
 सम्पत्ता के नाम पर गगनाद्वय से वायुयानों द्वारा सर्वथा
 परचित खुले नगरों पर शृंगु की वर्षा कर रहा है, निरीह
 शिरो पुरों तथा कोमल कात-कलेवर बालिका को हजारों
 मि मरुत म एक माध निदयता पूर्वक भूत रहा है, वहाँ
 भारत म अब भी आध्यात्मिकता का शांति निरुत मर मर
 मर धनि से प्रवाहित हो रहा है कलिकलुपिण हृदयों के कलि
 मर को धो रहा है। यही कारण है कि वर्तमान भौतिक
 युग में भी यहा समय समय पर आत्म चर्चा सम्बन्धी
 मनेकों छोटी मोटी पुस्तकें प्रकाशन के रग मच पर प्रवर्तित
 होना रहती हैं। श्रीपुन केजरीमलजी भी ऐसी ही एक
 न-ही-सी पुस्तिका धार्मिक समार की सेवा में लेकर उप
 हित हुण हैं। पुस्तक का नाम भी यही रखा है, आत्म
 चिन्तन अर्थात् आत्मा का चिन्तन—अपना चिन्तन।

उक्त गभीर विषय पर लिखन क लिख जो आध्या
 त्मिकता जीवन में उतरी हुई होनी चाहिये, यह लेखक
 में नहीं मालूम होनी। लेखक प्रत्यक्ष में हमें मिला है, वह
 एक साधारण सुधारक मनोवृत्ति का अवयुक्त है। अपनी
 चैन समाज के प्रति उसक हृदय में सविशेष आदर है,
 वह समाज में कुछ शक्ति-कुछ उन्नति देखना चाहता है।

उसके गहरे से गहरे चमत्कृत ॥ सब में बढ़कर तो खतर है, वह भावुकता की है। आध्यात्मिक चरित्र में अपना अधिकार नहीं होते हुए भी उसने जो वह पुष्पक लिणी है, वह भी भावुकता के आवारा में ही निष्ठी है। परन्तु भावुकता, आध्यात्मिकता की पननी होती है, अतः आध्यात्मिकता के दुरारोह पथ पर भी उसका यह प्रथम पद निश्चय प्रशसनीय है। भावुकता द्वारा गृहीत हुए वह भक्त-सुमनमाला स्व-अच्छी महक देती है। हमारा धार्मिक वाद है, यह अपने जीवनकाल में अधिक धर्मानुगामी मंत्र-मंत्रों को आकृष्ट करनी रहे और अपनी चिर-जीवनमया सत्यता के माध-पूर्ण करे।





आत्मोन्नति के सिद्धान्त और नियम



१ परमात्मा ही परम तत्त्व होने से वही हमारे जीवन का लक्ष्य और आदर्श है। हमारी आत्मा का शुद्ध रूप ही परमात्मा है। आत्मा ही सर्व शक्तियों और गुणों का भंडार है। सब अवस्थाओं में उसी का सहारा लेना चाहिये। उसको शुद्ध रूप में प्रकट करना इस मानव जीवन का परम ध्येय है।

२ आत्मा ही अपने सुख दुःख का कर्ता और मोक्ता है, वह जैसे कर्म करता है वैसे ही उसको फल मिलते हैं। सद्बिचारों और सत्कर्मों के द्वारा कर्मों का नाश और उनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

३ आरोग्य, परम सुख, शक्ति, यज्ञ, आनन्द आदि सब प्रकार के लौकिक और पारलौकिक, शारीरिक और मानसिक सुख आनन्द, मर्म नान, समय, श्रद्धा और एकाग्रता द्वारा प्राप्त होने से प्राप्त होते हैं ।

४ रोग, दरिद्रता विपत्ति, निर्बलता, चिन्ता, निराशा, आदि अवस्थाएँ आत्मज्ञान के अभाव के कारण ही दुःखरूप होती हैं । आत्मज्ञान हो जाने पर दुःख दुःख नहीं आने पड़ता और न उससे चिन्ता और निराशा ही उत्पन्न हो सकती है । आत्मज्ञान को आत्मचिन्तन द्वारा प्राप्त करके आत्मबल जागृत करके आनन्दमय जीवन व्यतीत करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है ।

५ अशुद्ध विचार से, अनिष्ट के चिन्तन से आत्मबल नष्ट होता है । इससे अपनी और दूसरों की हानि होती है । अपनी उन्नति चाहते हो,, जीवन में सुख शक्ति चाहते हो तो सर्व

तो सर्वद्व उच्चम विचार करो—आत्मा के गुणों का ही चिन्तन करो ।

६ आत्मोन्नति के लिये ब्रह्मचर्य प्रधान साधन है । यथाशक्ति समय से रहने का प्रयत्न करो । इसके लिय हमेशा अपने मन को काम में लगाये रखना, दृढ सकल्प—प्रतिज्ञा, सादा और अल्प आहार, व्यायाम, सद्ग्रन्थों का पठन पाठन और सज्जनों की सगति बड़े सहायक होते हैं ।

७ अपने मनको हमेशा शुभ विचारों से युक्त, उच्च, आशावादी और प्रसन्न बनाये रखो । मन में जैसे विचार होंगे, उसी प्रकार का जीवन बन जायेगा । मन की अवस्था पर शरीर का स्वास्थ्य निर्भर है, इसको कभी मत भूलो । चिन्ता, रोग, शोक, भय, शका, दस्त्रिदा, निराशा, क्रोध आदि के घातक विचारों को अपने मन से दूर रखो ।

८ शरीर के द्वारा हम सब कार्य कर सकते हैं ।

इस लिये शरीर को स्वस्थ, नीरोग और बलवान बनाये रखने के लिये स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना जरूरी है । उत्तम विचार और समयित जीवन से ही शरीर स्वस्थ रह सकता है । नियम से व्यायाम करना भी आवश्यक है । घूमना अच्छा व्यायाम है । सादा भोजन करना चाहिये । जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिये । प्रत्येक कार्य आहार विहार में समय रखना चाहिये । दुर्जनों से बचना चाहिये । नियम से आत्म चिन्तन करने से शरीर के सदुपयोग का ध्यान बना रहता है ।

६. परोपकारी जीवन ही सच्चा जीवन है । यथाशक्ति दूसरों का मला करो, कभी किसी का घुरा मत सोचो ।

१०. नित्य नियमित रूप से आत्म चिन्तन करो । इन उच्च विचारों को अपने सांसारिक व्यवहार में प्रकट करने का प्रयत्न करो । अस्फल होने

(५)

पर निराश मत हो । अपने सिद्धान्तों और नियमों में दृढ़ रहकर अपने प्रयत्न में लगे रहो, आत्म विश्वास रखो । धैर्य और सतत उद्योग से निश्चय ही सफलता मिलती है ।

११ आत्मा के सिद्धान्त को साधारण समझ कर यही मत डाल दो । उच्च और सत्य सिद्धान्त सूत्र रूप में सरल और साधारण ही होते हैं । इन्हीं सिद्धान्तों का चमत्कार कई मनुष्यों ने अपने जीवन में आश्चर्यजनक उन्नति की है । जिनके जीवन सुखी और सफल हैं, उनका अध्ययन करेंगे तो आपको किसी न किसी रूप में इन्हीं सिद्धान्तों को अपनाया हुआ पायागे फिर तुम उन्नति क्यों नहीं कर सकते हो ? अवश्य कर सकते हो, अवश्य कर सकते हो ।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

रहो मत आत्म ज्ञान से हीन ।

रहो मत आत्म गान से हीन ।

कौन हम, हमारा क्या है रूप ?
जग क्या ? परम विशिष्ट अनूप
बैसा बना हुआ है मय कूप
इहीं तीन प्रश्नों के भीतर सदा रहो लयहीन
रहो मत आत्म-ज्ञान से हीन ।

ज्ञान विन प्राप्त न होगी शान्ति
मोह से सदा रहेगी धाति
हृदय में होगी दुःख की प्राप्ति
आत्म-ज्ञान विन भरत-राष्ट्र है, दीन, हीन
छविहीन

रहो मत आत्म-गान से हीन ।

दीजिये सब बातों को छोड़
कीजिये धर्म मन से जीता
ज्ञान में लो निज श्रद्धा जोड़
सरल शिष्य सम विनय भाव से, चलि
पथिक प्रवीण
रहो मत आत्म ज्ञान से हीन ।

आत्म-चिन्तन

विषय-निर्देश



आत्मा को चिन्तामणि, कामधेनु, कल्पवृक्ष कहा है, यह विलकुल सत्य है। जिस प्रकार चिन्तामणि आदि से मनचाही वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं—मय इच्छाएँ पूर्ण हो सकती हैं, ठीक उसी प्रकार आत्मा ने द्वारा, आत्मा की शक्ति (आत्म बल) के द्वारा जो चाहो वही प्राप्त हो सकता है। आत्मा सब कुछ प्राप्त कर सन्ने के लिये चिन्तामणि के समान ही है। आत्मा का शुद्ध रूप एसा ही है। उसकी जानने की शक्ति (ज्ञान) अनन्त है उसकी श्रद्धाशक्ति (दर्शन) अनन्त है, उसकी पुण्यार्थ करने की शक्ति (वीर्य) अनन्त है और उसकी सदा सर्वदा आनन्द में रहने की शक्ति (सुख) अनन्त है। जो एसी

महान् शक्तियों की अनन्तता का पुत्र है-निसकी शक्तियों का पार नहीं है, वह जो चाहे वही कर सकती है इसमें कोई सन्देह नहीं। आत्मा ही ऐतम्य है, जीवन है, स्फूर्ति है, शाश्वतता है, शक्ति है, ज्ञान है, गुण है, आनन्द है, निर्मलता है, जो कुछ 'है', वह आत्मा ही है, यही परम तत्त्व है, परमात्मा है-आपा सो परमापा। ऐसी है आत्मा, जो आप-हम में है, जीव माय में है। परन्तु

परन्तु स्वयं सब कुछ होते हुए भी, चिन्ता मण्डि होते हुए भी यह आत्मा (जीव) समार में क्यों भटक रही है ? इस दशा को क्यों प्राप्त हुई है ? नित सुख के लिये प्रयत्न करते हुए भी सुखी क्यों नहीं होती ? अनेक प्रकार के दुःख, कष्ट, रोग, शोक, भय, चिन्ता, व्यथा और अमाय से यह क्यों घिरी रहती है ? उसकी ऐसी दशा क्यों है ?

हम सब ने अपने जीवन में कभी न कभी इस सम्बन्ध में विचार करने का प्रयत्न किया है।

आत्मा की यह दशा एक फल के समान है, जिसका बीज अवश्य ही होना चाहिये। कारण

पुनरापन में किये जाते हैं। जैसे उमर कम होते हैं, उमर आगार ही उसको सुख-दुःख का अनुभव होना है। जैसा बीज होगा, उमा ही उमर का फल होगा, यह प्रकृति का अटल नियम है।

आत्मा परिणामनशील (परिणामी नित्य) है, अर्थात् यह सत्कार में सदा प्रिया करती रहती है। उमर की कोई भी प्रिया या तो पूर्वकर्म व कल का भोगना (निर्जरा) होता है या नये कर्म का बाधना होता है क्योंकि आत्मा स्वयं ही अपन कर्म का कर्ता, रिकता और भोक्ता है। किसी भी प्रिया से इन दोनों में से भोग (कर्म-फल की प्राप्ति या निर्जरा) या शुभाशुभ फल में से एक प्राप्त तो होगी ही।

[१] जो कर्म उदय में आये हुए हैं वे आत्मा के भाव शुद्ध और शुभ होने के कारण दुःखरूप नहीं मालूम होंगे और अशुभ कर्म का बन्ध नहीं हो सकेगा ।

[२] जो कर्म सत्ता में (उदय नहीं हुए) हैं, वे आत्मा के भाव शुद्ध और शुभ होने के कारण विनाश को प्राप्त होंगे या अशुभ कर्म में कमी और शुभ कर्म का बन्ध होगा ।

[३] क्रिया करते समय शुद्ध और शुभ भाव रखने से या तो कर्म का संबंध विनाश होगा या शुभ कर्म का बन्ध होगा जिसका फल भविष्य में सुखकारक मिलेगा ।

दूसरे शब्दों में कहें तो शुद्ध भाव रखने से, आत्मा पर से कर्मों का आवरण हटने से उस के गुणों का प्रकाश होगा जिससे जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त होगी ।

अपने भावों को शुद्ध और शुभ रखने के लिये आत्मा को अपने स्वरूप का ध्यान होना चाहिये । परन्तु आत्मा तो अध्यात्म के अधिकार में है, कर्मों के आवरण से ढकी हुई है । उसका मन, इन्द्रियाँ और शरीर उस को चाहे जिधर मार्ग-कुमार्ग पर

पूषभय में किये होते हैं। जैसे उमरु कम होते हैं, उनका अनुसार ही उमरों सुख-दुःख का अनुभव होना है। जैसा बीज होगा, वैसा ही उग का फल होगा, यह प्रकृति का अटल नियम है।

आत्मा परिणमनशील (परिवर्तनीय) है, अर्थात् यह सत्कार में मग्न किया जाती रहती है। उसकी कोई भी क्रिया या गो पूषकम का फल का भागना (निजरा) होता है या नये का का बाधना होता है क्योंकि आत्मा स्वयं ही अपने कर्मों का कर्ता, विकर्ता और भोक्ता है। किसी भी क्रिया से रा दानों में से मोग (कम-फल की प्राप्ति या निजरा) या शुभाशुभ बन्ध में से एक प्राप्त तो होगी ही।

पर, सत्कार में आत्मा अपने पूषकम के स बन्ध में नहीं जानती कि वह जैन से उत्तर कर्म का उद्भव होकर उसको उसका फल मिलेगा क्योंकि उस पर अज्ञान का आवरण (परदा) पड़ा होता है। इसको न जानने पर भी आत्मा एक कार्य पर सकती है; वह कार्य है, अपने भाव (परिणाम) को शुद्ध और शुभ रखना। ऐसा करने से निम्न लाभ होंगे—

[१] जो कर्म उदय में आये हुए हैं वे आत्मा के भाव शुद्ध और शुभ होने के कारण दुस्वरूप नहीं मालुम होंगे और अशुभ कर्म का उन्ध नहीं हो सकेगा ।

[२] जो कर्म सत्ता में (उदय नहीं हुए) हैं, वे आत्मा के भाव शुद्ध और शुभ होने के कारण विनाश को प्राप्त होंगे या अशुभ कर्मों में कमी और शुभ कर्मों का उन्ध होगा ।

[३] किया करते समय शुद्ध और शुभ भाव रखने से या तो कर्मों का सपथा विनाश होगा या शुभ कर्मों का उन्ध होगा जिसका फल भविष्य में सुखकारक मिलेगा ।

दूसरे शब्दों में कहें तो शुद्ध भाव रखने से, आत्मा पर से कर्मों का आवरण हटने से उस के गुणों का प्रकाश होगा जिससे जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त होगी ।

अपने भागों को शुद्ध और शुभ रखने के लिये आत्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये । परन्तु आत्मा तो अज्ञान के अन्धकार में है, कर्मों के आवरण से ढकी हुई है । उसका मन, इन्द्रियाँ और शरीर उस को चाहे जिधर मार्ग-कुमांग पर

घसींटे ले जा रहे हैं, इनका स्वामी होने पर भी उसने अपना और मोह न कारण अपने आप को इनका दामन बना रक्खा है।

जब तक आत्मा को अपने आप का सधा धान नहीं हो जाता, वह अपने मन, इन्द्रियाँ और शरीर को अपने अधिकार में नहीं कर सकती। मन के अर्थात् विचारशक्ति के, जो ध्यान का साधन है, परम न होने से आत्मा के भाग शुद्ध शुभ नहीं हो सकते। और जब तक उसके भाग शुद्ध शुभ नहीं होते, न तो वह सत्कर्मों में पुरुषार्थ ही कर सकता है और न अपने पुण्यकर्मों के फलों को धैर्य शान्ति और साहस से सहन ही कर सकता है।

मन बड़ा चञ्चल है। यह सुरुप्त इन्द्रियों के अधीन होकर विचारों की ओर दौड़ता है और शरीर को भी वहीं घसींटे ले जाता है। मन की क्रिया विचार है। विचार ही कार्य की पहिल अवस्था है। प्रत्येक कार्य की रचना पहिल विचार जगत् म-मन में होती है बाद में वह का रूप में प्रकट होता है। विचारों के द्वारा आत्म अपने आपको बाहर प्रकट कर पाती है और बाहर के तत्त्व को भीतर ग्रहण कर लेती है।

अतएव सिद्ध है कि विचारों से जीवन बनता है। विचारों की शक्ति घड़ी प्रयत्न होती है। जो जैसे विचार करता है, वह वैसा ही बन जाता है, क्योंकि बिनाश एक ही प्रकार के विचार करने भावना रखने से आत्मा के भाव भी वैसे ही हो जाते हैं और उन्हीं के अनुसार क्रिया होने लगती है। भावों को शुद्ध शुभ रखने के लिये मन को पश में रखना चाहिये—अर्थात् हमेशा सद्विचारों को ही मन में स्थान देना चाहिये।

इसके लिये समय समय पर अपने विचारा की गति विधि की जांच करते रहना चाहिये और अपने अन्तर्जगत् में प्रवेश करके विचारना चाहिये कि “मैं कौन हूँ और क्या कर रहा हूँ”। इस क्रिया का नाम है, ‘आत्मचिन्तन’।

आत्मचिन्तन करने से आत्मा को अपनी दशा—बाहरी और भीतरी का ज्ञान होता है, उस को अपनी चिन्तामणि अवस्था—अपने गुणों और शक्तियों का ज्ञान होता है जिससे उस में आत्म बल जागृत होता है। आत्मबल के द्वारा सत्य ज्ञान हो जाने से, शुद्ध शुभ भाव धारण करने से वह मनुष्य (आत्मा) सुख, शक्ति और आनन्द को इस जीवन में भी प्राप्त करता है, उसको अपने

कार्यों में सफलता मिलती है और उसके द्वारा दूसरों का उपकार भी होता है ।

आत्मबल के द्वारा मनुष्य में यह सिद्धि और शक्ति आ जाती है कि जिससे उसके लिये असम्भव कार्य सम्भव और दुर्लभ सुलभ होजाता है ।

आत्मबल को जागृत करने के लिये निम्न तीन अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं—

(१) आत्म स्वरूप का ज्ञान—

आत्मा अजर, अमर, शाश्वत, निराकार और निर्मल चेतन तत्त्व है । कभी से आवृत्त होने के कारण इस ससार—चक्र में भटकती है । इसमें अनन्त धान, दर्शन, धीय और सुख, निहित हैं । हमकी शक्ति अजेय और अजर है । यहा अपने मुख दुःख का फल, विकर्ता और अकेला है । अपने यन्धन और मोह का कारण यह स्वय ही है । इसी का सहारा ही सच्चा सहारा है । सब स्थितियों में आत्मा के मूलगुण और स्वभाव को कभी न भूल कर, हर दशा में उन्हीं को एक मात्र सत्य समझ कर वैसी ही आत्मा अनुभूति करनी चाहिये ।

(२) दृढ़ धृष्टा—

धृष्टा से ही मन कुछ सम्भर है । बिना धृष्टा के जो कुछ किया जाता है, वह सार्थक नहीं होता । धृष्टाहीन को अपने कार्य में सफलता नहीं मिलती । ससार में जितने भी महान् कार्य हुए हैं, उनकी जड़ में अवश्य धृष्टा ही रही है । जो चमत्कार देखे और सुने जाते हैं, उनका आधार धृष्टा ही हुआ करती है । सिद्धि का प्रथम सोपान अवश्य धृष्टा—दृढ़ विश्वास ही है । अतएव जो कुछ करो, उसमें धृष्टा अवश्य धृष्टा रखो । यदि रखो धृष्टा जितनी अधिक दृढ़ होगी, उतनी ही शीघ्र और अधिक कार्य सिद्धि होगी ।

(३) एकाग्रता—

अपने मन की वृत्ति को एक ही विषय पर लगा देना एकाग्रता है । एकाग्रता से कार्य की शीघ्र सिद्धि होती है । कलाकार अपने आदर्श पर मन एकाग्र करके ही जो उसके मन में होता है, वैसी ही वृत्ति तैयार कर पाता है । एकाग्रता के बिना कोई कार्य योग्य रीति से नहीं हो सकता । एकाग्रता के बिना ध्यान नहीं लग सकता । एकाग्रता से ही आत्मा की शक्तियाँ जागृत हो

सकती है। आत्मचिन्तन का प्रभाव आत्मा पर तब ही हो सकेगा, जब मन एकाग्र होगा। एकाग्रता के बिना आत्मचिन्तन नहीं हो सकता। एकाग्रता ध्यान के द्वारा बढ़ती है। जिनकी अधिक एकाग्रता होगी, उतनी ही जल्दी सिद्धि होगी। मन की वृत्तियों को एकाग्र करके आत्मा भिमुख करो, उनको आत्मचिन्तन में लीन कर दो।

इन तीनों का मिलने पर आत्मचिन्तन सफल और साधक हो जाता है। फिर तो साधक अपने सुख और शान्ति के लिये, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये शरीर साधनों पर अवलम्बित नहीं रहता, वे तो उसके लिये माधारण ही रह जाते हैं, क्योंकि उसको तो उसके मूल आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है। यह अनुभव करने लगता है कि आत्मा चित्तमणि उस के पास है जिसके द्वारा यह जीवन की प्रत्येक वृत्ति में—क्या सुख और क्या दुःख में आनन्दमय रह सकता है। चाहे जैसे दुःख और विपत्ति के समय भी शान्ति और प्रेम उसका साध नहीं छोड़ते। अपने सब परिस्थितियों में वह शान्त, स्थिर और आनन्दी रहता है, सफलता सदा उसके सामने हाथ बाध कर खड़ी रहती है। सुख और शान्ति तो मान

उसी के हो जाते हैं, मन में सदा सन्तोष, जीवन में आनन्द और काय में सिद्धि उसके स्वाभाविक अंग बन जाते हैं ।

आत्म-चिन्तन के अनेक साधन हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—ध्यान, मन्त्रजप, धनि उच्चार, अध्यात्म पाठ, सामायिक प्रतिक्रमण, व्याध्याय, मत्संग और भावना (आत्म-सूचना) ।

आत्मचिन्तन का कार्यक्रम पुस्तक के अन्त में दिया गया है । साधक अपनी सुविधा के अनुसार भी क्रम रख सकते हैं ।



ध्यान ।



समस्त बाहरी वस्तुओं को भुला कर, अपने चित्त को एक ही विषय पर एकाग्र करके उन्नीस का विचार करते रहना 'ध्यान' है। ध्यान करने की विधि यह है—

किसी एक त-शान्त स्थान पर सुखासन से (पन सर तो पद्मासन से) पालधी लगा कर बैठ जाओ। कमर और पीठ को सीधा रखो, सिर बिलकुल सीधा सामन रहे। अपने हाथों को गोद में बाया हाथ नीचे और दाहिना हाथ उमक ऊपर अनलि के समान रख लो, अथवा हाथों को दोनों घुटनीयों पर रख लो। हृदि को नाक के अग्र भाग पर जमा दो। शरीर को ठानों मत, परिक उमको पक्कम कीला, शिथिल और बेमान करना। शरीर की जरा भी मुचनही रहना चाहिये। मज्जुर डाम

काटे, गुजली चले, पर बिना डिगे, ध्यान में लगे रहो। मन को उसका भान तक मत होने दो—ध्यान में बिलकुल तल्लीन दो जाओ।

अब, अपने मन को लो। अपने समस्त सकल्प विकल्प, बाहरी विचारों को त्याग दो—मन को बिलकुल खाली कर दो। बाहर के विचारों के लिये अपने मन के द्वार बन्द कर लो। अब मन में 'शान्ति' का ध्यान करो। मन में 'ॐ शान्ति' बोहते हुए भान करो कि मेरा मन और शरीर एकदम शान्त हो गये हैं। धीरे धीरे मन में अपने आप कहो कि, मैं शान्त हूँ, सबैसा शान्त हूँ। शान्ति मेरे चहुँ ओर व्याप्त है, मैं शान्ति के सागर में डूबा हुआ हूँ। मेरे अग अग, रोम रोम में शान्ति समा रही है। मेरा मन पूर्ण शान्त होगया है। मैं शान्त, एक दम शान्त हूँ। ॐ शान्ति शान्ति, शान्ति। इस प्रकार अपने मन के विचारों को शान्ति पर फँलाओ। शान्ति का ही विचार और अनुभव करते रहो, उसी पर मन को जमाये रहा। इस अवस्था में बीच में दूसरे बाहर के विचार आ धेरेंगे, शान्ति के विचारों से टकरावेंगे और मन इधर उधर भटकने लगेगा। परन्तु इसकी परवाह न करते हुए अपने प्रयत्न में दृढ़ रहो।

पर अपने विचारों का जमाये रहा। ध्यान, मन का व्यायाम है। ध्यान से मन की अपन ध्येय, ध्यान के विषय पर एकाग्रता बढ़ती है और इसकी सीधा प्रभाव आत्मा के मर्चा पर डालने लगता है, फलतः जीवन भी उन्हा प्रकार का बनने लग जाता है।

पहिल पहिल मन की शान्ति और एकाग्रता बढ़ाने के लिये 'शान्ति' का ध्यान लगभग १० मिनिट तक करना चाहिये। मन इस पर एकाग्र रह कर शान्त रहने लगे तो फिर अन्य गुणों का ध्यान करने लाभ उठा सकते हैं। कुछ ग्यान प्राप्त गुण ध्यान के लिये कहा लिये जाते हैं। ध्यान प्रति दिन नियत समय पर और हा सक तो नियत स्थान पर ही करना चाहिये। इसर लिये सब से अच्छा समय प्रातः काल (चौथा पहर, प्रातः मुहूर्त ३ से ६ तक) है। दूसरा रात को सोते समय का है। सामान्यिक के समय भी ध्यान कर सकते हैं। एक गुणका विधि पूरक ध्यान कम से कम एक मास तक करो पर यह जीवन में अपना प्रभाव दिखाने लगता है।

प्रत्येक अस्त्रा में, किसी भी प्रकार से आत्म चिन्तन करने के पहिले पाच मिनिट तक 'शान्ति'

का ध्यान करके, अपने मन को शान्त, स्थिर और एकाग्र कर लेना चाहिये ।

ध्यान के विषय *

अहिंसा (प्रेम)—

म आत्मा हूँ । अहिंसा आत्मा का धर्म है । मैं सब जीवों पर समभाव रखता हूँ । मैं मन, वचन और काया से किसी को कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा । सब जीवों को सुख शान्ति देने में, उनका हित करने में तत्पर रहूँगा । मैं सब को अपने समान ही समझता हूँ । शत्रु मित्र सब पर प्रेम भाव रखता हूँ, मैं सर्वत्र प्रेममय हूँ । इसलिये किसी को मुझ से कोई भय नहीं है और न मुझ ही किसी का भय है । मैं किसी में द्वेष, ईर्ष्या और आक्रोश नहीं करता । मैं अहिंसा से परिपूर्ण हूँ—मेरा प्रत्येक कार्य अहिंसा मय रहता है । मैं सब पर दया रखता हूँ । मैं सर्वत्र अहिंसा मय हूँ ।

* यथाशक्ति जब तो जेना ही चाहिये पर तो भी अपने ध्येय तक पहुँचने की आत्मशुद्धता प्राप्त करने में न्यायिक होने का कारण ध्यान करना आवश्यक है ।

मत्स्य—

मैं आत्मा हूँ। सत्य आत्मा का धर्म है। सत्य का पालन मैं मन, वचन और काया से करूँगा चाहे जैसे भय और लोभ दिवाने पर भी मैं मत्स्य के मार्ग से नहीं दियूँगा। मत्स्य के किये मैं प्रायः तक वे दूँगा। सत्य ही मेरा रह है। सत्य जीव यथाथ जीवन ही मेरा सत्य है। मैं सत्यप्रतर्धान हूँ—मेरा ध्ययहार सत्य से परिपूर्ण रहता है।

प्रस्तेय (अचौर्य)—

मैं आत्मा हूँ। मैं सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ। मैं दूसरे की वस्तु उससे बिना पूछे कदापि न लूँगा। मैं चोरी करने का महापाप कभी नहीं करूँगा। वस्तु पर उनके मालिक का अधिकार ही सच्चा अधिकार है। मैं मन, वचन और काया से किसी की वस्तु का अपहरण नहीं करूँगा। सम्पूर्ण—सर्वथा परिपूर्ण हूँ, मुझ में चोरी करने के भाव तक कदापि नहीं आ सकते। मुझ में किसी वस्तु का अभाव नहीं है।

ब्रह्मचर्य—

मैं आत्मा हूँ। ब्रह्मचर्य आत्मा का धर्म है।

आत्मा की उन्नति का प्रधान साधन ब्रह्मचर्य पालन ही है। मैं मन वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। कोई भी अपवित्र विचार मेरे मन में नहीं आ सकते। मेरी इंद्रियाँ मेरे वश में हैं। जो आकषक है और सुन्दर दिखाई देता है, वह पौद्गलिक है, नाशवान है, उस पर मेरी आत्मा कदापि मोहित नहीं हो सकती—एसे घोर पाप का विचार तक नहीं कर सकती। ब्रह्मचर्य ही जीवन है। मैथुन में काइ सत्य नहीं है। अब मेरे विकार शान्त होगये हैं। मैं ब्रह्मचर्य व्रत पर दृढ़ हूँ—परमपवित्र हूँ—शुद्ध हूँ। आत्मा हूँ।

अपरिग्रह—

मैं आत्मा हूँ। आत्मा के गुण ही अपने हैं, शेष सब मोह है, इसलिये त्याज्य है। मैं सत्य में परिपूर्ण हूँ। जो कर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला है, यही मुझे मिलेगा। मैं भविष्य के लिये मोह में पड़कर सप्रह नहीं करूँगा। मैं अपनी जरूरतों को कम करके धोरे में अपना निर्याह करूँगा। अब मैं परिग्रह को मैं परमार्थ के लिये समाज को अलग कर दूँगा। परिग्रह के लिये मैं अपनी शक्ति और समय को नष्ट नहीं करूँगा। अब मैं परिग्रह बुद्धि से मुक्त होगया हूँ—मैं तो सर्वथा सम्पूर्ण हूँ।

क्षमा (अक्रोध)—

म आत्मा हूँ। मैं परम शांत हूँ। मैं अनन्त क्षमा से परिपूर्ण हूँ। मुझ जरा भी बाध नहीं है। जो मुझ से बैर विरोध रखते हैं, मेरी निन्दा करते हैं। मैं उन सबको मन, पचन और क्षमा से क्षमा करता हूँ। जो मेरी हानि करते हैं, उनसे मैं बदला लेने की शक्ति होते हुए भी बदला न लेकर उनको क्षमा करता हूँ। मैं किसी का अपराध किया हो, कटुपचन बड़े ही तो मैं उनसे हृदय से क्षमा मांगता हूँ। मैं किसी की हानि, अपमान, निन्दा और विरोध नहीं करूँगा, कोई गाली देगा तो भी उसको क्षमा कर दूँगा। मैं क्रोध, बैर विरोध, ईर्ष्या, कपट, घुराई, कटु पचन, निन्दा आदि का बदला क्षमा भाव से ही लूँगा। मैं सबको क्षमा कर रहा हूँ और ये मुझ क्षमा कर रहे हैं।

मौन—

म आत्मा हूँ। मैं व्यर्थ ही धोतकर अपनी शक्ति को नष्ट नहीं करूँगा। निरर्थक बातें, गप्प, निन्दा आदि मैं न पढ़ूँगा। मौन मैं ही सच्ची शक्ति है। मैं जब बोलूँगा तो उद्देश्य से ही बोलूँगा—

सत्य, हितकर और प्रिय वचन ही बोलूँगा। मैंने निरर्थक बातों से अपनी जीभ को मोड़ लिया है। मैं जानता हूँ कि सच्चा मौन जीभ को ही नहीं बरिक्त मन को भी शांत रखना है। मेरी याहू शक्ति आत्मचिन्तन में लगी रहती है, मैं मौन धारण करके अपनी आत्मा में संयमित रहता हूँ। मौन से आत्म बल की वृद्धि होती है।

आत्म संयम—

मैं आत्मा हूँ। मैं सदैव आत्म भाव में ही लीन रहता हूँ। ससार की कोई घटना या विचार मुझ पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। मैं आत्म तत्त्व में पूर्णता से स्थित रहता हूँ। मैं सब स्थितियों में परम प्रसन्न रहता हूँ। चाहे जैसे दुःख, विपत्ति, अशुक्ति और विकार मुझ अपने आत्मानन्द से चलायमान नहीं कर सकते। मुझ में सदैव आनन्द मौजूद होता है। मैंने सब प्रकार के लोभ, भय, काम, मोह, मद आदि विकारों को जीत लिया है। आत्मसंयम से मैं सदैव विजयी होता हूँ।

निर्भयता—

मैं आत्मा हूँ। मैं परम निर्भय हूँ। आत्मा की

शक्ति अनन्त है, सब चित्रयी है। मुझ किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता। मैं प्रत्येक क्षण में सदाशा निभय रहता हूँ। किसी भी मनुष्य या घटना से मैं डरा भी नहीं रहता। मैं आत्मज्ञानी हूँ। मैं हमेशा आत्मा के गुणों का ही अनुभव करता हूँ, इसलिये कोई बात मुझ परभीत नहीं कर सकती। मैं परम निभय हूँ परम ज्ञान है मेरा ह।

निर्माह--

मैं आत्मा हूँ। ससार मैं कोई किसी का नहीं हूँ। आत्मा के गुणों के सिवाय कुछ भी मेरा नहीं है, फिर क्यों मैं ससार के पदार्थों में मोह रत कर अपनी आत्मा को पराधीन बनाऊँ? मैं ने ससार के पदार्थों से मोह हटा लिया है। जहाँ मोह है, वहाँ दुःख है। निर्मोह परम सुख है। मैं सर्वदा आत्म भाव में ही हूँ।
 किसी व्यक्ति का^१
 इनका सयोग^२
 मैं निर्माही हूँ।

धे^३

मैं आत्म

म सर अयरुगाओं में—क्या सुख और क्या दुःख में मग्नभाव रखता हूँ और उनकी धीरज से सहन करता हूँ। मुझ में अपार धैर्य है, कठिन से कठिन विपत्ति के समय भी मैं हताश और अधीर नहीं होता क्योंकि जानता हूँ कि सन्तोष और धीरज का फल भीठा होता है। मेरे काय में कभी अशान्ति और जल्दी नहीं रहती। सन्तोष ही परम धन है। मेरा आलम्ब धैर्य ही है, मैं धैर्यवान् हूँ।

पवित्रता—

मैं आत्मा हूँ। मैं परम पवित्र हूँ। मैं प्रत्येक अयरुगा में सदा पवित्र रहता हूँ। पवित्रता ही मेरे जीवन का आधार है। लोभ और चिक्कार मुझे पवित्रता से कदापि डिगा नहीं सकते। मैं पवित्रता पर दृढ़ हूँ। मैं मन, वचन और काया से सदा पवित्र रहूँगा। मैं आत्मा हूँ, पवित्रता आत्म धर्म है। अब मुझे आत्मज्ञान होगया है, इसलिये पवित्रता ही मेरी प्रत्येक क्रिया में रहेगी, मैं परम पवित्र हूँ।



मन्त्र-जप ।

उसी आसन से बैठे हुए ध्यान के द्वारा मन को शान्त, स्थिर और एकाग्र करके मन्त्र जप करना चाहिये । म ओं म अमोघ शक्ति है । इनके द्वारा ही हमारे पुण्यों ने अनेक समस्कार पूर्ण काय कर दिखाये थे, जो आज हमारी कल्पना तक में नहीं आते । मन्त्र का अर्थ का ध्यान में रखकर, उस पर हृद धृष्टा और एकाग्रता करके नियम पूर्वक मन्त्र का जप किया जाय तो निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो ।

अनेक मन्त्र हैं, पर जो अपने को हृष्ट हो, जिस पर अपनी धृष्टा हो, उसी का जप करना चाहिये । बोलकर जप करने की अपेक्षा मौन जप में अधिक शक्ति होती है । मयदुर चिन्ता, क्रोध आदि विकारों के समय बोलकर जप करने से तुरन्त शांति प्राप्त हो सकती है ।

नीचे जप के लिये प्रसिद्ध मन्त्र लिखे जाते हैं, इनमें से किसी एक का जप करना चाहिये ।

१ पंच परमेष्ठि श्री नमो नमो महामन्त्र—

नमो अरिहताय, नमो सिद्धाय,
नमो आपरियाय, नमो उषजभाषाय,
नमो लोएसन्वसाय ।

अर्थ—अरिहत (जो राग, द्वेष को जीतकर जीवन्मुक्त होगये हैं) को नमस्कार हो । सिद्ध (जि होने कर्मों का कृत्स्न क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया है) को नमस्कार हो । आचार्य—धर्माप देश, चतुर्विध सघ के नायक साधु को नमस्कार हो । उपाध्याय—धर्म ज्ञान शिक्षक साधु को नमस्कार हो और सब साधुओं को नमस्कार हो ।

यह अत्यन्त प्राचीन महामन्त्र है । असंख्य महात्मा और जन साधारण इसको जपते आये हैं । इसमें देव (अर्द्धत और सिद्ध) और गुरु आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार किया गया है क्योंकि ससारी आत्मा के लिये ये आदर्श हैं, इनके ही मार्ग पर चलने में आत्मा का कल्याण

है। इनका आदर्श सामने रखकर ही आत्मा अपनी उन्नति कर सकती है। देव-अरिहन्त और सिद्ध, वे आत्माएँ हैं जिन्होंने अपनी आत्मा की सम्पूर्ण उन्नति कर हमें मार्ग दिखा दिया है कि आत्मा इस श्रेष्ठतम चरम पद को प्राप्त कर सकती है और गुरु (साधु) वे आत्माएँ हैं, जो अपने उच्च आचरण और अनुपदेश से हमको आत्मा के गुणों का ज्ञान कराते हैं। इनका ध्यान करने से इनके चरित्र को आदर्श मानकर अनुकरण करने से आत्मा में अपने गुणों की जागृति होती है यह अपने को शुद्ध रूप में प्रकट करने का प्रयत्न करती है।

नवकार महामन्त्र महा चमत्कार युक्त है। इसके चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इदं भ्रष्टा से किये हुये अप से जो प्राप्त हो सकता है, उसका क्याल तक ससार स्वप्न में भी नहीं कर सकता।

२ ॐ—यह नवकार महामन्त्र का सक्षिप्त नाम है। इस एक शब्द में पाँचों पद आ जाते हैं। अर्द्धत और अशरीरी (सिद्धि) का प्रथम अक्षर

अ, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ और मुनि (साधु) का म् मिलकर ॐ बना है। अ+अ+आ+उ+म् की मधि होकर ॐ हुआ।

३ ॐ शांति—इसका जप करने से पापों पक्षों के साथ ही शांति का भी रोध होता जाता है। यह परम शांति का देने वाला है। चर जीवन मं। चन्ता, घराहट, रोग की तीव्रता, मय आदि का जोर हो तो इसका जप करने से शांति प्राप्त होती है।

४ सोऽह—इसका मतलब 'यह म ह' होता है। म अर्थात् आत्मा ही यह अर्थान् परमात्मा है—आत्मा का शुद्ध रूप ही परमात्मा है। इसका जप करने से आत्मा अपने परमात्म गुणों में—शुद्ध स्वरूप में रमण करने लगती है, उनमें तरलीन हो जाती है। आत्मा अपनी ससार अवस्था को भूल कर अपने अन्तरतम—परमात्म रूप से एक हो जाती है। इसका सतत चिन्तन और अनुभव करने से जीवन व्यवहार में भी यही भाव काम करने लग जाता है। इस मन्त्र के जप से आत्म-दीनता—मैं कुछ नहीं ह, क्या करूँ आदि दीन भाव

दूर होकर आत्मा को अपनी परमात्मा शक्ति का ज्ञान हो जाता है; आत्मा में सब, जीवन और कार्य समता प्रकट होती है।

मन्त्र का जप करते समय उसके अर्थ (गुणों) का ध्यान रखना चाहिये। इससे बिना किवा हुआ जप विशेष लाभदायक नहीं होता।

माला का साधन—मन्त्र पर मन को एकाग्र रखने के लिये माला के दाने पर बोला जाता है। माला से जप करने का बड़ा प्रवाद है। माला की संख्या नियत करके प्रतिदिन नियम पूर्वक ही माला फेरी जावे। दाने पर मन्त्र को बो लते समय चित्त को उस पर एकाग्र रखना चाहिये—मन्त्र के अर्थ का पूरा ध्यान रहे कहीं ऐसा न हो कि दाने के साथ मन्त्र बोलते हुए भी मन बाहर ही भटकता रहे।

आनुपूर्वी—मन्त्र पर मन को एकाग्र रखने के लिये माला के समान ही आनुपूर्वी भी एक अति प्रचलित और प्रसिद्ध साधन है। यह माला से किसी कदर अधिक सार्थक होता है क्योंकि इसमें पञ्चपरमेष्ठि के पाँच पदों को को एक म लोम

बेलोम रहने से उसी प्रकार बोलते हुए अपना
 इत्ता है। इससे मन को उसका ध्यान रखना
 इत्ता है और यह एकाग्र रहता है। इसी कारण
 प्रानुपूर्वी द्वारा ज्ञान करने का यह प्रचार है।

प्रानुपूर्वी की जप विधि ।

- तहाँ १ है यहाँ नमो अरिहताय बोलना ।
- तहाँ २ है यहाँ नमो सिद्धाय बोलना ।
- तहाँ ३ है यहाँ नमो आयरियाय बोलना ।
- तहाँ ४ है यहाँ नमो उपरम्भाय बोलना ।
- तहाँ ५ है यहाँ नमो लोएसन्ध्याय बोलना ।





ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| २ | १ | ३ | ४ | ५ |
| ३ | ३ | २ | ४ | ५ |
| ४ | १ | २ | ४ | ५ |
| ५ | ३ | १ | ४ | ५ |

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ |
| २ | १ | ४ | ३ | ५ |
| ३ | ४ | २ | ३ | ५ |
| ४ | १ | २ | ३ | ५ |
| ५ | २ | १ | ३ | ५ |

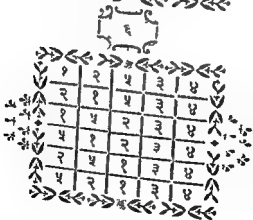
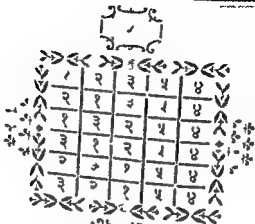
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

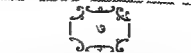


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ४ | २ | ५ |
| ३ | १ | ४ | २ | ५ |
| १ | ४ | ३ | २ | ५ |
| ४ | १ | ३ | ० | ५ |
| २ | ५ | १ | २ | ५ |
| ४ | ३ | १ | २ | ५ |



| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | ३ | ४ | १ | ५ |
| ३ | ० | ४ | १ | ५ |
| २ | ४ | ३ | १ | ५ |
| ४ | २ | ३ | १ | ५ |
| ३ | ४ | २ | १ | ५ |
| ४ | ३ | २ | १ | ५ |

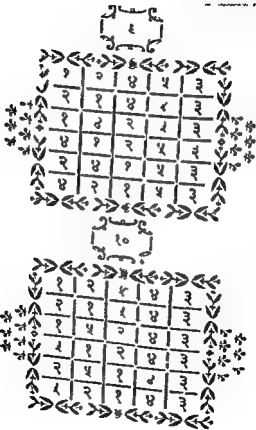


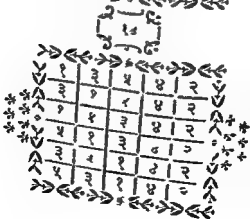
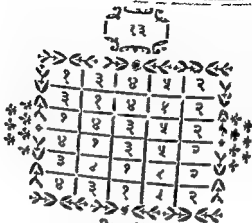


| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ३ | ५ | २ | ४ |
| ३ | १ | ५ | २ | ४ |
| १ | ५ | ३ | २ | ४ |
| ५ | १ | २ | २ | ४ |
| ३ | ५ | १ | २ | ४ |
| ५ | ३ | १ | २ | ४ |



| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | ३ | ५ | १ | ४ |
| ३ | २ | ५ | १ | ४ |
| २ | ५ | ३ | १ | ४ |
| ५ | २ | ३ | १ | ४ |
| ३ | ५ | ० | १ | ४ |
| ५ | ३ | २ | १ | ४ |



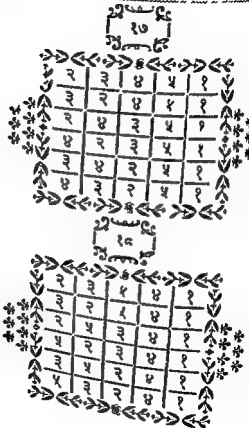




| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | ४ | ५ | ३ | २ |
| ४ | १ | ५ | ३ | २ |
| १ | ५ | ४ | ३ | २ |
| ५ | १ | ४ | ३ | २ |
| ४ | ५ | १ | ३ | २ |
| ५ | ४ | १ | ३ | २ |



| | | | | |
|----|---|---|---|---|
| 10 | 8 | 4 | 2 | 2 |
| 9 | 7 | 3 | 1 | 2 |
| 10 | 5 | 8 | 9 | 0 |
| 5 | 3 | 8 | 9 | 2 |
| 8 | 6 | 3 | 9 | 0 |
| 5 | 0 | 3 | 1 | 2 |



२५
१६
३०

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २ | ४ | ५ | ३ | १ |
| ४ | २ | ५ | ३ | १ |
| २ | ५ | ४ | ३ | १ |
| ५ | २ | ४ | ३ | १ |
| ४ | ५ | २ | ३ | १ |
| ५ | ४ | २ | ३ | १ |

२५
२०
३०

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ३ | ४ | ५ | २ | १ |
| ४ | ३ | ५ | २ | १ |
| ३ | ५ | ४ | २ | १ |
| ५ | ३ | ४ | २ | १ |
| ४ | ५ | ३ | २ | १ |
| ५ | ४ | ३ | २ | १ |

ध्वनि उच्चार ।

आरम्भ गुण यथक शब्द-ध्वनि का मधुर स्वर से उच्चारण करने से अन्तर और बाह्य घातावरण एकदम आनन्दय बन जाता है । इससे चिंता, घबराहट, रक्तानि, रोष, और अशांति मिट कर शान्ति, आनन्द और उत्साह छा जाता है । ध्वनि का उच्चार मधुर बड़ से, भीतर से गुज़ार करते हुए धीरे धीरे करना चाहिये, उसमें इतने तमप हो जाना चाहिये कि वाहरी अंगत् का ध्यान तक न रहे ।

यहां कुछ ध्वनियां दी जाती हैं, इनमें से अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुसार कोई भी बोल सकते हैं । प्रत्येक ध्वनि की एक पूर्ति यहां दी गई है । एक बार बोलकर फिर उसे बोलना चाहिये । इस प्रकार जब तक इच्छा हो, चार छ मिनिट तक बोलते रहना चाहिये ।

(१), ॐ ! ॐ II ॐ III, ॐ ! ॐ II
ॐ III

(२) ॐ अर्हम् ! ॐ अर्हम् ॥ ॐ अर्हम् ॥

ॐ ! ॐ ॥ ॐ ॥

‘ ॐ अर्हम् ’ अहिंसित परमात्म सूचक है ।

(३) ॐ आनन्दम् ! ॐ आनन्दम् ॥

ॐ आनन्दम् ॥

ॐ ! ॐ ॥ ॐ ॥

यह आनन्द वर्धक है ।

(४) ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !

ॐ शान्ति ॥

ॐ ! ॐ ॥ ॐ ॥

यह शान्ति वर्धक है ।

(५) ॐ आरोग्यम् ! ॐ आरोग्यम् ॥

ॐ आरोग्यम् ॥

ॐ ! ॐ ॥ ॐ ॥

यह आरोग्य-वर्धक है । रोग की अवस्था में इससे शान्ति प्राप्त होती है । रोगी के सिर पर हाथ रख कर इसे उच्चारण करना चाहिये, इससे रोगी की घबराहट और रोग की तीव्रता शान्त होती है ।

अध्यात्म पाठ ।

सूत्र सूक्ति-गास्त्र गाथा

[जयणा से पढ़]

धम्मो भगवत्सुखिक्कट्ट, अहिंसा स नमो नरो ।
 वेधा दित नमसति, जस्त धम्मं मयामणो । १ ॥
 अप्पा नइ वेयग्णी, अप्पा मे हूइसामली ।
 अप्पा कामदुहा वेणू, अप्पा मे नन्दख घण ॥ २ ॥

धर्म महात्तम भगवत् है । अहिंसा भयम और तप धर्म
 हैं । निनका मन मदा घम में जगा रहता ह उनका दव
 भी नमस्कार करत हैं ॥ १ ॥

यह गाथा खुद ही नरक का वनरणा नदा भार फूट
 शाश्वली टूट क समान हु मदायी हैं, और इच्छित वस्तु
 देने वाली कामधेनु और नन्दनवन क समान सुखदायी हैं ।

अप्या कृत्ता विकृत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
 अप्या मित्रममित्रं च, दुष्पट्विय सुपट्विश्रो ॥ ३ ॥
 धर मे अप्या दन्तो, सजमेण तवेण य ।
 माह परेहिं दम्मतो, रधणेहिं बहेहिं य ॥ ४ ॥
 अप्याणमेव जुज्झाहि, किं जुज्झण उज्झयो ।
 अप्याणमेव अप्याण, जहत्ता सुहमेहप ॥ ५ ॥
 अप्या चेव दमेयवो, अप्या हु खलु दुहमा ।
 अप्यादन्तो सुही होई, अस्सिं सलोप परत्थ य ॥ ६ ॥

यह आत्मा ही अपने मुर पुन का कर्ता धार विक्ता
 भोत्रा है अर यह आत्मा गुमाग पर रहने पर अपना
 मग्न और गुमाग पर रहन परअपना हा मग्न होता है ॥ ३ ॥

बाहर क बन्धन या बध स मन विष तान का
 अपेक्षा समय धार तप स अपना आ मन्मन करना उत्तम
 है ॥ ४ ॥

अपने साथ ही युद्ध कर बाहर युद्ध करने स क्या
 होता है ? आत्मा को आत्मा न ही चीन न स युद्ध प्राप्त
 होता है ॥ ५ ॥

अपनी आत्मा को ही दमन करना चाहव आत्मा
 दुर्दमनीय है । आत्मा का दमन करने वाला हा इस लोक
 और परलोक न सुखी हाता है ॥ ६ ॥

पश्चिदियाणि कोह माण माय तद्वेव लोह य ।
 दुज्जय चेव अप्पाण, सव्वमण्ये जिण जिण ॥७॥
 जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जण जिण ।
 एण जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमोज्जओ ॥८॥
 जय घरे जय चिद्रे, जयमासे जय सण ।
 जय भुज तो भास तो, पाउकम्म न उधर ॥ ९ ॥
 लाभालाभे सुहे दुप्पे, जीविण मरणे तहा ।
 समो निदापससासु, तहा माणावमाणओ ॥ १० ॥

पार्श्व इन्द्रियाँ क विषय, मोक्ष, मान, मामा लोभ
 भार आत्मा दुर्जय है । आत्मा को जीत लेने पर इन सब
 का जीत लिया होता है ॥ ७ ॥

जिस वास्तव योद्धावाँ को दुर्जय समाप्त में जो जीत
 लेता है, उस से भी अधिक विजयी यह है जो अपने आप
 को जीत लेता है ॥ ८ ॥

साधधानी [यत्न] से चल, नका रह, बंटे, सोचे,
 भाजन करे भार बोले तो पापकर्म का बन्ध नहीं होता ॥ ९ ॥

लाभ में या हानि में, सुख में या दुःख में, जीवित
 रहने या मरने में निन्दा या प्रशंसा किये जाने पर और
 मान या अपमान किये जाने पर रहे, समभाव रखे ।

खामेभि स चे जीवा, स चे जीवा एतमु मे ।
मित्री मे सद्य भूपसे, वेऽ मज्झ न वण्णै ॥ ११ ॥

परमानन्द स्तात्र !

अनन्तसुखसम्पन्न, ज्ञानासृजपयोधरम् ।
अनन्तधीर्यसम्पन्न, दर्शय परमात्मन ॥ १ ॥
परमानन्दसयुक्त, निर्धिकार निरामय ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजवेहे ध्वयस्थितम् ॥ २ ॥
आकार रहित शुद्ध, स्वस्वरूपे यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपत, निर्धिकार निरजनम् ॥ ३ ॥

मैं सब जीवों को समा करता हूँ सब जीव मुझे बना करते हैं, मेरी सब जीवों के साथ मिश्रता है किसी के साथ मुझे बैर नहीं है ॥ ११ ॥

अनन्त सुख विशिष्ट, ज्ञानरूपी अमृत स भरे हुए समुद्र के समान आर अव-त बल युक्त परमात्मा का स्वरूप समझना चाहिये ॥ १ ॥

परमानन्द युक्त, रागादि विकारों से रहित, रोगों से मुक्त और अवन शरीर में ही निराजमान परमात्मा का ध्यान हीन मनुष्य नहीं देख सकते ॥ २ ॥

जो आकार रहित, शुद्ध अपने स्वरूप में ही स्थिति सिद्ध के आठ गुणों से युक्त और कर्ममल से रहित है, ॥ ३ ॥

स एव परम ब्रह्म, स एव जिनपुगव ।

स एव परम तत्त्व, स एव परमो गुरु ॥ ४ ॥

■ एव परम ज्योति, स एव परम तप ।

स एव परम ध्यानम्, स एव परमात्मकम् ॥ ५ ॥

स एव सवक्ल्याण, स एव सुख भाजनम् ।

स एव शुद्धचिद्रूप, स एव परम शिवम् ॥ ६ ॥

स एव परमानन्द, स एव सुख दायकः ।

स एव घनचैतन्य, स एव गुणसागरः ॥ ७ ॥

अनन्त ब्रह्मणोरूप, निजदेहे व्यवस्थित ।

ज्ञान हीन न पश्यति, जात्यधा इव भास्करम् ॥ ८ ॥

वही परमब्रह्म जिन, परमतप और परम गुरु है ॥ ४ ॥

वही परम ज्योति, परम ध्यान और परमात्मा है ॥ ५ ॥

वही सब वक्ल्याण है परम सुख का पात्र, शुद्ध चिद्रूप
और परम शिव है ॥ ६ ॥

वही परम आनन्द, सुख दाता परम चैतन्य और
गुणों का समुद्र है ॥ ७ ॥

अनन्तमह रूप परमात्मा अपने शरीर में ही रहा हुआ
है, जिस प्रकार जन्माव सूर्य का नहीं दख सकत, वैस
ही ज्ञान हीन उसको नहीं दख सकत ॥ ८ ॥

नलि या च यथानीर, मि न तिष्ठति सधंदा ।
 अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति सधंदा ॥ ६ ॥
 काएमध्ये यथावह्नि , शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
 अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स परिद्धत ॥१०॥
 तत्सम तु निजात्मान, यो जानाति स परिद्धत ।
 सहजान दचैतन्य, प्रकाशयति महियसे ॥ ११ ॥
 सदानन्दमय जीव, यो जानाति स परिद्धत ।
 स सेवते निजात्मान, परमानन्दकारणम् ॥ १२ ॥

कमल के पत्ते पर पानी की बूँद के समान वह निमल
 आत्मा शरीर के भीतर रहकर भी स्वभाव से भिन्न रहता
 है ॥ ६ ॥

जैसे लकड़ी में आग शक्ति रूप से रहती है, वैसे ही
 शरीर के भीतर आत्मा को जो शक्ति रूप में जानता है,
 वही परिद्धत है ॥ १० ॥

जो अपनी आत्मा को इस प्रकार जानता है, वह उस
 के स्वाभाविक आनन्द को विशेष प्रकार से प्रकट करता
 है ॥ ११ ॥

जो अपनी आत्मा को सदा आनन्दमय जानता है,
 वही परिद्धत है । और वही आत्मा को परम आनन्द का
 कारण समझ कर उसको सेवा करना जानता है ॥ १२ ॥

तद्ध्यानं कियते भयै, यत्नं कर्म विलीयते ।
 तत्क्षणं दत्ते पुनः चि उमत्कारलक्षणम् ॥ १३ ॥
 [मूल से उद्धृत]

समभाव पाठ

मत्तुषु मर्त्री गुणीषु प्रमोद,
 विलेपेषु जीवेषु दृषापरत्यम् ।
 माध्यस्थ्यभावे विपरीतवृत्तौ,
 सदा ममामा विदधानु देव ॥ १ ॥
 शरीरतः कर्तुमनशक्तिः,
 विभिन्नमात्मानमपास्तदोरम् ।
 जिने उ कोयादिव त्वत्तयष्टि,
 तव प्रभादेन ममास्तु शक्ति ॥ २ ॥

भगवत् जीवों को इसीका ध्यान करना चाहिये जिससे
 कर्म नष्ट होने पर उत्ती ममत्व वस्तुत्व चमत्कार रूप शुद्ध
 ताव परमात्मा के दशन होते हैं ॥ १३ ॥

इ दृष्ट 'मं जीव मात्र मे मित्रता गुणीजनों के साथ
 प्रेम, दुखी जीवों पर दया भाव और दुर्जन-दुष्टों पर
 माध्यस्थ्य भाव रखना चाहता हूँ ॥ १ ॥

इ चिन्तन 'आपकी कृपा मे मुझ में जैसी शक्ति देना
 है कि जगत् ध्यान मे तत्त्वज्ञान अज्ञान की अज्ञानता है, उसे
 ही मर्ती इस धन-त शक्तिशाली निदाव शुद्ध आत्मा को
 शरीर मे अलग कर दूँ ॥ २ ॥

दुःखे सुखे वरिणि वन्धुवर्गे,
 योगे वियोगे भवने चने वा ।
 निराकृता शेषममत्वबुद्धे ,
 सम मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
 यो दशन शान सुख स्वभाव ,
 समस्त ससार विकार बाह्य ।
 समाधिगम्य परमात्मसम ,
 स वेद्यदेवो हृदये ममास्ताम् ॥४॥

प्रभो ! समस्त ममत्व बुद्धि को त्याग कर मेरा मन
 दुःख में, सुख में, शत्रुओं या वन्धुओं के मित्रता और वि-
 ह्वलता में, इच्छित वस्तु के वियोग में और अनिच्छित के
 संयोग में घटने और बनने में सदा समभाव से रहे ॥३॥

जो अनन्त दशन शान और सुखरूप स्वभाव बाह्य
 है, सम्पूर्ण ससार के विकार पैदा करने वाले परिणामों से
 राहत है, जो उच्च ध्यान से प्राप्त होने योग्य है और जिस
 को परमात्मा कहते हैं वह देवाधिदेव और हृदय में निरा-
 जमान हो अर्थात् मैं परमात्म स्वरूप बनूँ ॥ ४ ॥

निवृत्ते यो भवदुःखजाल,
 निरीक्षत यो जगदन्तराल
 यो अन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीय,
 स दयदेवो हृदये ममास्ताम् ॥५॥

यो व्यापरो विभ्वजनीनवृत्ते,
 सिद्धो विरुद्धो घृतकर्मग्रन्थ ।
 ध्यातो धुनीते सकल विकार,
 स दयदेवो हृदये ममास्ताम् ॥६॥

जो ससार क दुर्गा की नष्ट करता है, जो जगत् क सब पदार्थों को दग्धता है, जो अन्तरगत भ प्राप्त है और ध्यानिर्वा द्वारा दग्धन योग्य है वह दयाधिवश मेरे हृदय में विराजमान हो ॥ ५ ॥

जो हीना जगत् के पदार्थों का दग्धने वाला ज्ञान की अपेक्षा समस्त लोके क पदार्थों में व्यापक है, सिद्ध है बुद्ध है तथा कर्मबन्धा का विमल नाश कर दिया है और जिस का ध्यान करने से सब विकार नष्ट हो जात हैं, वह दया धिवश मेरे हृदय में विराजमान हो ॥ ६ ॥

न नृपते नृपते
 यो नृपते नृपते
 निरुद्ध नृपते
 स रज्जु रज्जु ॥ ३१
 विनाशे नृपते
 न विनाश नृपते
 स्थाने नृपते
 न रज्जु रज्जु ॥
 विनाशे नृपते
 विनाशे नृपते
 शुद्ध नि नृपते
 न रज्जु रज्जु ॥ ३४

३४

जस धारक कसू भेदों पर कुछ प्रभाव न मरे
 नहीं दिगा मकता स-२३, स-२३ क दोष
 तक नहीं मकत-३३ ॥ ३३ ॥ स-२३ क दोष
 नित्य ह धार गुण स-३३ ॥ ३३ ॥ स-२३ क दोष
 धारका एक ह नै धार ॥ ३३ ॥ स-२३ क दोष
 मैं उस धार दार धार लेता ह जो धार
 मैं स्थित शान स-२३ ॥ ३३ ॥ स-२३ क दोष
 भी मसार को दार धार लेता ह जिसक
 जिसक शान न स-२३ ॥ ३३ ॥ स-२३ क दोष
 दते हैं, धार धार धार धार
 रहित ॥ ३३ ॥ स-२३ क दोष

का द दशन
 ने चित्त को
 गह समाधि

न सस्त्रोऽश्मा न तणु न मेदिनी,
विधानतो नो फलको विनिमित्तम् ।
यतो निरस्ताक्षरुषायविद्विष ,
मुधीभिरात्मव मुनिनता मतः ॥ १० ॥

न सस्त्रो भद्र समाधिसाधन,
न लोक पूजा न च सघमेक्षणम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भयानिह,
प्रिमुन्य सर्वापि शास्त्रासनाम् ॥ ११ ॥

समाधि क लिये प ष्ट्र घाम या पूष्णी क या लक्ष्मी
की पत्नी क आसन को आवश्यक नही माना गया है ।
जिस आत्मा न कपार्या से बच कर डाला है वह निमल
आत्मा ही विद्वाना द्वारा आत्मन माना गया है ॥ १० ॥

है भद्र ' समाधि का साधन न तो आत्मन ही है, न
लोक पूजा है और न सघ-सम्मेलन ही है । इसलिये तू
पादरी शासनाधी को छोड़ कर हर प्रकार से अध्यात्म में
(अथवा शुद्ध स्वरूप में) जीन हो ॥ ११ ॥

न सति वाद्या मम केचनार्थी,
भवामि तेषा न कदाचनाहम् ।
इत्थ निनिश्चित्य विमुक्त्य वाद्या,
स्यस्य सदा त्व नव भद्र मुक्त्य ॥ १२॥

आत्मानमात्म यतिलोस्यमानः
स्य कथंन ध्यानमयो विशुद्धः ।
एकाग्रचित्त खलु यत्र तत्र,
स्थितोपि साधुलमते समाधिम् ॥ १३॥

मेरी आत्मा स बाहर कजो भी पदार्थ हें ये भरे
नहीं हें आर न मैं ही उ-का उभी हूं एसा निश्चय करक
ह भद्र । बाहरी बातों को छोड़ कर भाव प्राप्त करने क
लिये अपनी ही आत्मा में स्थिर हा ॥ १२ ॥

अपने का अपने में ही अवलोकन करने वाला तू दर्शन
ज्ञानमय आर निमज है । जहाँ कोई साधु अपने चित्त को
एकाग्र करक ध्यान में स्थिर होवा है, उहाँ वह समाधि
को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम् ।
परं दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं,
स्वयं कृतं कर्म निर्वर्त्यं तदा ॥ १८ ॥

निजाजितं कर्म विहाय बेहिमो,
न कोपि कस्यापि ददाति किञ्चन ।
विचारयन्नेव मनन्यमानसः,
परो ददातीति विमुच्य श्रेणुषीम् ॥ १९ ॥

आत्मा ने पूर्व काल में जो कर्म किए हैं, उनका शुभ
अशुभ फल स्वयं उदा पाती है । यदि अपने कर्म के
बिना दूसरे का दिया हुआ फल प्राप्त होना खरो तो यह
स्पष्ट है कि अपनी आत्मा का किया हुआ कर्म कार्य ही हो
जाय ॥ १८ ॥

जीव करने उपाजित कर्मों का ही फल पाते हैं अपने
उपाजित कर्मों को वादकर कोई भी किसी को कुछ नहीं
दता । इस प्रकार एकाम चित्त से विचार करते हुए दूसरा
दता है पत्नी बुद्धि का त्याग देना उचित है ॥ १९ ॥

सयोगतो दुःखमनेकमेव,
यतोऽश्नुते जन्ममने शरीरी ।
तत्तस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो,
पियासुना निवृत्तिमात्मनीनाम् ॥ १६॥
अतिक्रम य विमतेर्ध्यतिक्रम,
जिनातिचार सुचरित्रकमण ।
व्यघादनाचारमपि प्रमादत ,
प्रतिक्रम तस्य करोमि शुद्धये ॥ १७॥
विमुक्तिमार्गं प्रतिकूलवर्तिना,
मया कपायाज्ञवशेन दुधिया ।
चारित्र्यशुद्धैर्यदकारि लोपन,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृत प्रभो ॥ १८॥

मत्सार स्त्री बन में यह देही जीव पाइर के पदार्थों
क सम्बन्ध से अनेक प्रकार क दुःख पाता है । जो इनके
सम्बन्ध से पैदा होने वाले दुःखों से बचना चाहता है,
वह इनके सम्बन्ध को मन-वचन-क्रिया से छोड़ दे ॥ १६॥
हे जिनदेव ! मैं ने दुर्बुद्धि से प्रमादरस भ्रमने उत्तम
चारित्र्य में जो अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार आर अनाचार
दख किये हों तो उनकी शुद्धि के लिये परचात्ताप
करता हूँ ॥ १७ ॥

मोक्ष मार्ग के निरुद्ध चलने वाले मुक्त से कपाय के
वश होकर चारित्र्य की निर्मलता का जो शिवाग् किया मया
हो, वह सब पाप मिथ्या हो ॥ १८ ॥

एक सदा शाश्वतिनो ममात्म
 विनिर्मल साधिगमस्यभाष ।
 गहिभया सन्त्यपरे ममस्ता,
 न शाश्वता कर्मभया। स्वर्गीय
 सर्व निराकृत्य यिरुद्वजाल,
 ससारकान्तारनिपातहेतुम् ।
 विविश्रमात्ममयस्थमानो,
 निलीयसे त्व परमात्मतत्त्वे ॥

[धी चमितिगतिस्तूरि विरचित मामाधिक पाठ मे म

मेरी आत्मा सदा एक शररत (नित्य),
 बदल भाव स्वरूप है, और मेरा आत्मा से बा
 पदार्थ अपने कर्मों से ही मुक्त प्राप्त हुए हैं, व
 उनकी अवस्था सदा बदलती रहता है ॥ १६॥

समार स्त्री बन में गिरान जाने सब रि
 करके व अपनी आत्मा को सब में गिरा
 परमात्मावाच में लीन हो ॥ २० ॥

मेरी भावना

जिसने रागद्वेषकामादिक जीते,

सर अंग जान लिया ।

सर जीवाँ को मोक्षमार्ग का,

निस्पृह हो उपदेश दिया ।

युद्ध वीर, जिन, हरि, हर, प्रह्ला,

या उसको स्वाधीन कहो

भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह,

चित्त उसी में लीन रहो ॥ १ ॥

विषयों की आशा नहीं निनक,

साम्प्रभाय धन रखते हैं

निज-परके हित-साधन में जो,

निशदिन तत्पर रहते हैं

स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या,

बिना खेद जो करते हैं

पैसे धर्म साधु जगत के,

दुग्ध समूह को हरते हैं ॥ २ ॥

रहे सदा सासग उर्दी का,

ध्यान उर्दी का नित्य रहे

रन ही जैसी चया में यह,

नहीं मताऊ किसी जीव को,
 भूठ कभी नहीं कहा करूँ
 पर वन ध्वनिता पर न लुभाऊँ,
 सतोषामृत पिया करूँ ॥ ३ ॥
 अहकार का भाव न रखूँ,
 नहीं किसी पर क्रोध करूँ ।
 दल दूसरों की बढ़ती को,
 कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ ।
 रहे भावना ऐसी मेरी,
 सरल सत्य व्ययहार करूँ ॥
 गने जहाँ तक हम जीवन में,
 औरों का उपकार करूँ ॥ ४ ॥
 मैत्री भाव जगत में मेरा,
 सब जीवों से नित्य रहे ।
 दीन-दुखी जीवों पर मेरे,
 उर से कछुआघ्रोत षहे ॥
 दुःख-दूर-दुःमागरतों पर,
 लोभ नहीं मुझको आवे ।
 साम्यभाव रखूँ मैं उन पर,
 ऐसी परिणति हो आवे ॥ ५ ॥

• 'धियो' 'वनिता' के स्थान पर 'मता' पढ़ें ।

गुणी जनों को देख हृदय में,
 मेरे प्रेम उमड़ आवे ।
 बने जहाँ तक उन की सेवा,
 करके यह मन सुख पाये ॥
 होऊँ नहीं एतन्न कभी मैं,
 द्रोह न मेरे उर आवे ।
 गुण ग्रहण का भाव रहे नित,
 हृदि न दोषों पर आवे ॥ ६ ॥
 कोई पुरा कहो या अच्छा,
 लप्सी आवे या जावे ।
 लाखों वर्षों तक जीऊँ या,
 मृत्यु आज ही आ जावे ॥
 अथवा कोई कैसा ही भय,
 या लालच देने आवे ।
 तो भी न्यायमार्ग से मेरा,
 कभी न पद टिगने पावे ॥ ७ ॥
 होकर सुख में मग्न न फूले,
 दुःख मैं कभी न घबरावे ।
 पर्वत नदी—श्मशान—भयानक,
 अटवी से नहीं भय खावे ॥
 रहे अडोल—अकण्ठ निरन्तर,
 यह मन दृढ़तर बन जावे ।

राष्ट्रविशेष—अनिष्टयाग में,
 मदन-जीनता विग्रहाये ॥ ८ ॥
 सुधी रहें मय जीर जगत के,
 कोई कभी न घबराये,
 धैर-पाप-अभिमान छोड़ जग,
 नित्य नये मंगल गाये ।
 घर घर चचा रहें धर्म की,
 दुष्टत दुष्टर हो आवें ।
 धान-चरित उद्यत कर अपना,
 मनुज जन्म फल सब पावें ॥ ९ ॥
 ईति भीति व्याप नहि जग में,
 कृषि समय पर हुआ करे ।
 धमनिष्ठ होकर राजा भी,
 न्याय प्रजा का किया करे ॥
 राग—मरी—दुर्मिष्ठ न फले,
 प्रजा शांति से जिया करे ।
 परम अहिंसा—धर्म जगत में,
 फैल सदैवहित किया करे ॥ १० ॥
 वैजे प्रेम परस्पर जग में,
 मोह दूर पर रहा करे ।

अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहीं,
 कोई मुख से कहा करे ॥
 बनकर सब 'युग वीर' हृदय से,
 देशोद्यति रत रहा करें।
 पस्तुस्वरूप विचार खुशी से,
 सब दुःख संकट सहा करें ॥११॥
 —धी जगन्निशोरजी मुक्ताहार

आत्म अमरता

अब हम अमर भये, न मरेंगे—
 या कारन मिथ्यात दियो तज,
 फ्योंकर देह धरेंगे ॥ १ ॥
 राग द्वेष जग बन्ध करत है,
 इनको नाश करेंगे।
 मर्यो अनन्तकाल ते प्राणी,
 सो हम काल हरेंगे ॥ २ ॥
 देह बिनाशी, हम अविनाशी,
 अपनी गति पकरेंगे।
 नाशी जाशी हम बिरवासी,
 चोखे ह्वे निखरेंगे ॥ ३ ॥

मर्या अनन्त बार विन समज्यो,
 अर मुख दुःख विसरगे ॥
 आनन्दघन निपट निरुद अक्षर हो,
 नहिं समरे सो मरंगे ॥ ४ ॥
 — योगी आनन्दघनजी

चेतावनी

परलोक मुख पामना, कर सारो सकत ।
 हजी पाजी छे हाथ मा, चेत चेत नर चेत ॥ १ ॥
 जोर करी ने जीततु, खरेखर रण चेत ।
 दुश्मन छे तुन देह मा, चेत चेत नर चेत ॥ २ ॥
 गाफल रहीश गमार तु, फोगट धईश फजेत ।
 हवे जरूर दुश्मियार यई, चेत चेत नर चेत ॥ ३ ॥
 एता न राणा राजिया, तुर नर मुनि समेत ।
 तु हो * तरणा तुल्य हो, चेत चेत नर चेत ॥ ४ ॥
 माटे मन मा समजीन, विचारी न कर चेत ।
 क्या धी आयो क्या जवु, चेत चेत नर चेत ॥ ५ ॥
 शुभ शिलामण समभक्तो, प्रभु साधे कर हेत ।
 अत अविचल एज छे, चेत चेत नर चेत ॥ ६ ॥
 — शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी

अन्तरतर हे !

अन्तरतम मम विकसित कर, अन्तरतर हे !
 निमल कर, उज्ज्वल कर, सुन्दर कर हे !
 जागृत कर, उद्यत कर, निभय कर हे !
 मंगल कर, निरलस नि सशय कर हे ॥
 सय के सग युक्त कर, मुक्त कर बन्धन,
 सचारित कर सय कर्मों में शान्त छुन्द प्रतिक्षण ॥
 धरण पथ में मम चित स्पन्दित कर हे !
 नदित कर, नदित कर, नदित कर हे ॥
 (हिन्दी अनुवाद) —कवीन्द्र ग्रीन्द्रनाथ

आत्म-विचार

बहु पुण्य करा पुजधी, शुभ देह मानवनो मल्या,
 तोये अरे ! भवधरु नो, आदो नही एके दल्यो
 सुख प्राप्त करता सुख दले छे, लेख ए लखे लहो,
 क्षण क्षण भयकर नाय मरखे, का अहो राखी रहो ?
 लक्ष्मी अने अधिकार लधता, शुधधु ते तो कहो ?
 शु कुटुम्ब के परिचार थी बधवापण ए नय गृहो,
 बधवापण ससारनु नरदेह ने हारी जओ,
 एनो विचार नहि अहो हो ! एक पल तमने हवो !
 निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, ल्यो गमे त्याधी भले,

ए रि य शक्तिमान जेधी, जजीरे धी नीदन ॥
 पर वस्तुमा नहि मुठयो, एनी दया मुठने रही,
 न त्यागया सिद्धांत जेवधातु दुख ते मुख नहि ।
 हु कोलतु ? क्या भीषयो ? गुं स्वल्प छे मादखर !
 कोना सम्यक चलगला छु ? गगु क ए पदक !
 एना रि गगु दिक्कपूर्णक शांत भावे जो कथा,
 ता सध म मिश्र ध्याननासिद्धांततत्त्व अनुभम्प्यो !
 त म त परथा पचन कोनु, सम्य केवल मानगु !
 नि, रि नगु कथन मानो, 'तह' जेणे अनुभम्पु
 र ! आत्म तारो ! आत्म तारो ! शीघ्र एने आतछा
 तथा ममा समदधि छो, आ वधनने हृदये लखो ।
 — धीमद रात्रधन्

आवय आथक

आवक जन तो तेने कहिय,
 ज पीड़ पराई जाल र ।
 पर दु छे उकार करे तोरे,
 मन अभिमान न घाल र ॥
 सकल लोक मां सहु न धर,
 निदा न करे कना र ।
 पाय काछ मन निधल राख,
 धन धन जननी तेती रे ॥ २

महर्षि ने दृष्टा त्यागी,
 परस्त्री जेने मात रे ।
 ह्मा थकी असत्य न बोले,
 पर धननघ भाले हाथ रे॥ ३
 ह माया व्याप नहिं जेने,
 हठ वैराग्य जेना मन मा रे ।
 ह्य नाम सु ताली लागी,
 सकल तीरथ तेना तन मा रे॥ ४
 एलोभी ने कपट रहित छे,
 काम क्रोध निबाया रे ।
 ए 'नरसैया' तेनु दर्शन करता,
 कुल एकोतर ताया रे॥ ५॥
 — श्रीनरसिंह मेहता

आत्म-जागरण

उठ जाग मुसाफिर मोर भई,
 अथ रैन कहा जो सोवत है ।
 जो जागत है सो पावत है,
 जो सोवत है सो खोवत है ॥
 दुक नींद से अखियों खोल जरा,
 ओ माफिल ! रव से ध्यान लगा ।

य प्रीत करन की रीत नहीं,
 रय जागत है तू सोयत है
 नादान भुगत करनी अपनी,
 ओ पापी ! पाप में चैन कहा
 नर पाप की गठरी शीश बरी,
 फिर शीश पकड़ क्यों रोयत है
 जा काल करे सो आच ही कर,
 जो आच करे सो अर करल
 जय त्रिदिश ने चुग खेत लिया,
 फिर पछताये क्या होयत है

नाम-जपन

नाम जपन क्यों छोड़ दिया ?
 नाशन छोड़ा भूट न छोड़ा,
 मल्य वचन क्या छोड़ दिया !
 भूट जग में जा ललचाकर,
 असल वतन क्यों छोड़ दिया !
 कौड़ा का तो गूर समहाला,
 लाल रतन क्या छोड़ दिया !
 जिहि सुमिरन ते अति सुख पावे,
 सो सुमरिन क्यों छोड़ दिया ?
 खालम एक भगवान भरोसे,
 तन, मन, धन क्यों न छोड़ दिया !

भाई में भगवान

म तेरा तू मेरा प्यारे, मैं तेरा तू मेरा ।
 मनमोहन तू मेरा स्वामी, म हूँ चिरा तंग ।
 परिहरि मुझको प्रेम चिन्त करि उना लिया है वरा ॥१॥
 म तेरा तू मेरा प्यारे, म तेरा तू मेरा ।
 ना २ नाथ कहि तुझको देरा, जानि अला प्रवरा ।
 गली गली बहुतेरा हेरा, मिला न तय देरा ॥२॥
 म तेरा तू मेरा प्यारे, म तेरा तू मेरा ।
 नीन दु खी काधे पर कमल मिला पावने वरा ।
 तेरा रूप उसी में दीखा, उमडा प्रवरा ॥३॥
 मैं तेरा तू मेरा प्यारे म तेरा तू मेरा ।
 भाई कह कर गले लगाया, अश्रुति ॥४॥ वरा ।
 भाई में भगवान मिला तू गया शरण कर ॥५॥
 म तेरा तू मेरा प्यारे, म तेरा तू मेरा ।

१ से

विवेक-सूत्र

जीवन की प्रत्येक क्रिया में विवेक रखना चाहिये। अपने कर्तव्य में हित अहित का भान न रहने से, अविवेक के कारण यही एक क्रिया अपने उसी रूप में प्रतिक्रिया का काम करने लग जाती है—गुण अवगुण बन जाता है। प्रत्येक क्रिया में विवेक रखने से ही वह हितकर हो सकती है। इसके लिये निम्न विवेकमूत्र का पाठ खास-खास गुणों का ध्यान दिला देता है। कहीं एक गुण अविवेक के कारण अवगुण न बन जाये, इसकी चेतावनी दे देता है।

- १ समालोचक हो, निंदक नहीं।
- २ निर्लिप्त हो, उदासीन नहीं।
- ३ नम्र हो, चापलून नहीं।
- ४ वीतराग हो, अकर्मण्य नहीं।
- ५ समाशील हो, भीरु नहीं।

सामायिक-प्रतिक्रमण ।

रागद्वय त्याग करके समवाय धारण करना सामायिक है । यह धन है, जो एक मुहूर्त ४८ मिनिट का किया जाता है । आत्मचिन्तन करने का यह उका ही अच्छा माधन है । सामायिक के काल में आत्मचिन्तन की किया ही करनी होती है । सामायिक के समय का अर्थ की बातों में नहीं गिताना चाहिये । सामायिक में प्रतिक्रमण किया जाता है, या मुनिमहाराज का सरसग मिलता है, तो यह ठीक राति से पूरा हो जाता है । आत्माप्रति क लिये प्रतिदिन सामायिक करने का नियम उना लेना चाहिये ।

सामायिक के काल में आत्मचिन्तन नियम से कर लेना चाहिये । इस पुस्तक का सारा धर्म ही सामायिक के काल में रख लिया जाये तो सामायिक भी सार्वक हो जाय और

चित्तन भी हो जाया करे। इतने पर भी समय उच नो धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये। ऐसे स्वाध्याय के लिये सामायिक से बढ़ कर कौन सा अच्छा अवसर मिल सकता है। सामायिक में मन के दोष आत्मचिन्तन करने से, उचन क दोष मौन धारण करने से और शरीर के दोष एक आसन से बैठने से दूर सकते हैं।

प्रतिक्रमण--जो व्रत नियम आदि ग्रहण कर रखे हैं, उनके सम्बन्ध में जो दोष लगे हैं, उनका विचार करके, आत्मनिरीक्षण करके उनके लिये पश्चात्ताप करना और फिर अपने व्रत नियमों का स्मरण करके उनमें दृढ़ होना प्रति क्रमण है।

दिन, रात, पक्ष, चातुर्मास और वर्ष भर के दोषों से उनका सम्बन्ध है अनुसार दिवस, रात्रि, पालिक, चातुर्मासिक और सवत्सरी सम्बन्धी प्रतिक्रमण करना व्रतधारियों के लिये तो अत्यावश्यक है इनसे सिवाय दूसरे भा व्रतों के ज्ञान, स्वाध्याय और अपनी भूतों के लिये पश्चात्ताप करने, क्षमा मागने के लिये प्रतिक्रमण करते हैं। केवल भावुकता के कारण प्रतिक्रमण-मूढ़ के पाठ

ल लेने या सुन लेने में सार्थकता नहीं है।
 सको समझ कर, अपने घटों में दृढ़ होने से ही
 शेष लाभ हो सकता है। समापना भी मन्त्रों
 नी चाहिये, अपने हृदय को पुद्ध करना चाहिये।
 पने द्वारा जो दोष और भूलें हुई हैं, उनको जान
 र आगे नहीं करने का दृढ़ संकल्प कर लेना
 चाहिये। जो हो चुका, उसका तो मूल जाने में
 र आगे के लिये सावधान रहने में ही पर ध्यान
 । इतना हो, तब ही मन्त्रा प्रतिक्रमण हो
 कता है।

रात को सोते समय अपने सारे दिन के
 यहार में अपने से जो दोष हुए हैं, उन का
 चार करके आत्मनिरीक्षण तो अवश्य ही कर
 ना चाहिये।

जो आत्मचिन्तन नियम से करना चाहते
 हैं, उनको प्रतिदिन एक सामायिक तो आवश्यक
 करने की प्रतिज्ञा ले लनी चाहिये।



स्वाध्याय

आत्मा की उन्नति के लिये स्वाध्याय उठा
अच्छा साधन है। शास्त्र, धर्मग्रन्थ और पुस्तकें
पढ़ने से मनुष्य को महात्माओं और विद्वानों के
विचार मिलते हैं। इसलिये यह एक प्रकार से
उत्तरी सगति करने के समान ही है। स्वाध्याय
से ज्ञान, बुद्धि और अनुभव बढ़ता है। स्वाध्याय
का मनुष्य के जीवन पर उदा प्रभाव गिरना है।
जो जैसे विचार या विषय को पढ़ता रहता है
उसका जीवन भी वैसा ही हो जाता है। अपने
स्वाध्याय में उत्तम पुस्तकों को ही रंगान देना
चाहिये। शास्त्र, धर्मग्रन्थ, महापुरुषों के जीवन
चरित्र और आत्मज्ञान सम्बन्धी साहित्य
पढ़ने से निश्चय ही विचारों में तदनुकूल
परिवर्तन होकर जीवन सुधरता है और मनुष्य
आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ने लगता है। किसी

विषय या पुस्तक को मात्र पढ़ लेना ही स्वाध्याय नहीं है, किन्तु स्वाध्याय अपने पाच अंगों से परिपूर्ण होने पर ही सभा स्वाध्याय होता है। पाच अंग ये हैं—(१) वाचना। गुरु के पास या स्वयं पढ़ना। (२) पूछना—उस सम्बन्ध की अपनी शका गुरु या अनुभवी से पूछना। (३) परावर्तना—पढ़े हुए भाग को फिर सोचना करना। (४) अनुप्रेषा—अभ्यस्त पढ़े हुए विषय पर मनन करना, और (५) धर्म कथा—अपना सीखा हुआ ज्ञान दूसरों को सुनाना समझाना, व्याख्यान देना, लेखन प्रकाशन आदि द्वारा ज्ञान प्रचार करना। स्वाध्याय को आभ्यन्तर तप कहा है। मनुष्य के जीवन के निर्माण में स्वाध्याय का खास स्थान हुआ करता है। अतएव अथर्व्य ही प्रति दिन थोड़ा बहुत स्वाध्याय करने का नियम रखना चाहिये। थोड़ा थोड़ा स्वाध्याय करते रहने पर भी मनुष्य कुछ समय में ज्ञानवान हो जाता है। नियम से स्वाध्याय करने का अवसर सामायिक में मिल सकता है।

सत्संग

जिसको सत्संग मिल गया, उसका तो जीवन ही सुधर गया समझो। सद्गुरु और सदाचारी मनुष्य की सगति से मनुष्य का जीवन उन्नति के मार्ग पर लग जाता है, क्योंकि सत्संग में हमारे सामने जीवित आदर्श होता है। उसके जैसे विचार और आचार होते हैं, अपना आचरण भी वैसा ही बन जाता है। सगति सत्पुरुषों की ही करना चाहिये। जो जैसी सगति करता है, निश्चय ही वह वैसा ही बन जाता है। महापुरुषों की सगति का प्राप्त होना एक बड़ा सौभाग्य है। प्रति दिन अवश्य ही सद्गुरु का सत्संग करने का नियम रखना चाहिये। जो अपने से घात, आचार, विचार और अनुभव में बड़े हुए हैं या समान हैं, उनकी सगति करने से ही जीवन में उन्नति हो सकती है। मूर्ख, व्यसनी और दुराचारी की सगति से बचना चाहिये, ऐसी सगति में पड़ कर अच्छे से अच्छे मनुष्य का जीवन विगड़ जाता है।

मदाचारी और उच्चचरित्र मनुष्य की सगति करने से निश्चय ही अपने ध्यान और आचार विचार में परिवर्तन होकर आत्मोन्नति होती है। सद्गुरु का सत्संग प्राप्त होना मानो जीवन को पार लगाने के लिये नौका का मिलना है। सत्संग का अपसर कभी न चूटना चाहिये।

—

भावना या आत्म-सूचना

अपने मन में एक ही विचार को गहरा-
लगातार सोचते रहना भावना है। गहरा एक
ही विचार को मन में सोचते रहने से आत्मा पर
उसी प्रकार के भावों का प्रभाव गिरता है। भावना
आत्मा को सूचना देना है, इसीलिए इसको आत्म-
सूचना (Auto suggestion) कहते हैं। हमारा
जीवन, हमारा स्वभाव, हमारा स्वास्थ्य और
हमारी परिस्थिति हमारी भावनाओं से बने होते
हैं। अपने विचारों के अनुसार ही अपना जगत्
बन जाता है और वैसा ही प्रतीत होना है। भावना
निश्चय ही अपना प्रभाव दिखाती है। भावना एक
प्रकार का ध्यान ही है। जो वैसी भावना करता है,
वह वैसा ही हो जाता है—‘यादशी भावना यस्य
सिद्धिर्भवति तादृशी’।

हम राश्वर ध्यान तक नहीं रखते कि चलते फिरते, उठते गठते और शर्तें करते समय हम कसे विचार धारण किये रहते हैं—कैसी आत्म सूचनाएँ अपने आपको देते रहते हैं—कैसी भावना करते रहते हैं। यही कारण है कि अचानक कोई अनपेक्षित (जिसकी आशा तक नहीं की हो) घटना हो जाने पर आश्चर्य करने लगते हैं। क्या भी विचार व्यर्थ नहीं जाता। विशाल समुद्र में फकी हुई एक ककरी से उठन वाली लहरों के समान ही मन में सोचे जाने वाले विचार की लहरें न जाने कहाँ तक और क्या तक के लिये अपना प्रभाव जमा लेती हैं और समय आने पर फल देती हैं। इसलिये हमेशा सव्यविचारों को ही अपने मन में स्थान दो, शुभ भावनाएँ ही करो। सममान, आनन्द, प्रेम, आशा, उत्साह, आरोग्य और परमाध्य के विचारों को ही मन में धारण करो, हमेशा अपने आपको ऐसी ही सूचना देते रहो। इससे थोड़े ही काल में जीवन में आनन्दमय परिघटन दृष्टिगोचर होगा। सुख, शान्ति और सन्तोष से जीवन ओत ओत हो जायेगा।

अपने आपको कभी भी दीन, हीन, दुखी,

रोगी और निराश मत समझो, न कभी मन में ऐसे विचार ही उठने दो। कोई तुमको ऐसा कहे तो मन ही मन हड़ता से उसका प्रतिकार करके अपने को सूचना दो कि मैं ऐसा नहीं हूँ-अच्छा ही हूँ। आत्मा तो अनन्त गुणों से-ज्ञान, शक्ति, सुख, वीरता और सफलता से परिपूर्ण है।

उदाहरण के लिये यहाँ कुछ आत्म सूचनाएँ (भाषनाएँ) लिखी जाती हैं; इनको बारबार अपने मन में बोलते रहना चाहिये और अनुभव करना चाहिये कि, "मैं वास्तव में ऐसा ही हूँ और कोई भी गहरी विचार मुझ पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता"। चाहें तो ध्यान की विधि से इनका ध्यान भी कर सकते हैं।

आरोग्य के लिये आत्म सूचना—

मैं आत्मा हूँ। आत्मा तो सर्वदा आनन्द और शक्ति से परिपूर्ण है। उसे कदापि कोई रोग नहीं हो सकता, वह सधदा सम्पूर्ण स्वस्थ है। शरीर आत्मा से भिन्न है; शरीर तो नाशवान है, आत्मा नित्य है। मैं शरीर का, अनित्य वस्तु का ध्यान छोड़ कर, आत्मा का, नित्य वस्तु का ही ध्यान

करता हूँ । मैं नीरोग और निरामय हूँ । मैं स्वस्थ और आनन्दमय हूँ । मैं आत्मा हूँ ।

सफलता के लिये आत्म सूचना—

मैं आत्मा हूँ । आत्मा अनन्त शक्तिमान है । इसलिये वह सब कुछ कर सकने में समर्थ है । मैंने जो कार्य हाथ में लिया है, उसको सफल करने की सामर्थ्य मुझ में है । मैं अवश्य ही सफल होऊँगा । मुझ में सफल होने की सब योग्यताएँ हैं । विघ्न बाधाएँ मेरा कुछ नहीं कर सकतीं । मैं उनकी परवाह नहीं करूँगा । मैं सफल होऊँगा ।

आनन्द के लिये आत्म सूचना—

मैं आत्मा हूँ । आनन्द आत्मा का धर्म है । मेरी आत्मा में अनन्त आनन्द है । मैं सदा आनन्द में मग्न रहता हूँ । कोई भी घटना या विचार मुझ अपने निर्दोष आनन्द से हटा नहीं सकते । मुझ सब आनन्द ही मासूम होता है । मैं आत्मानन्द में लयलीन रहता हूँ । मैं आनन्दी हूँ । आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!

इसी प्रकार आवश्यकता के अनुसार अन्य विषय की भावना की जा सकती है ।

घोर चिन्ता और निपत्ति के समय—

कभी कभी मनुष्य के जीवन में ऐसी घटनाएँ हो जाया करती हैं, जिससे उसके मन की शक्ति सम्पूर्ण नष्ट हुई जान पड़ती है, घोर चिन्ता आ घेरती है, जीवन भार सा हो जाता है और कुछ भी समझ नहीं पड़ता। ऐसी घटनाओं में अपने प्रेमी का देहान्त हो जाना, इच्छित वस्तु का प्राप्त न होना, धन का संयथा नाश, घोर अपमान, परीक्षा आदि में फेल हो जाना आदि मुख्य होती हैं। ऐसी घटनाओं से उत्पन्न दुःख की वेदना को सहन न कर स करने में आत्मग्ल की कमी ही कारण हुआ करती है। अतएव आत्म ज्ञान के द्वारा आत्मग्ल प्राप्त करके ऐसे समय मनुष्य दुःख को सहन करने की शक्ति प्राप्त कर अपने वित्त को शान्ति द सकता है।

इसके लिये निम्न क्रियाओं को अपनी आवश्यकता या रुचि के अनुसार करना चाहिये। जब मन अत्यन्त अशान्त हो उठे, आत्मग्लानि होने लगे और चिन्ता बढ़ने लगे, उस समय इनको करना चाहिये। इनके सिवाय नियम से आत्मचिन्तन अवश्य करना चाहिये और विशेष

करके मंत्रजप इसमें बड़ी शान्ति देता है। इन क्रियाओं से तो मन भी अशान्ति के समय ही शान्ति मिल जाती है।

किसी शांत-एकान्त गुल कमरे में जहाँ ताजी हवा आती हो, बिस्तर पर (बिना तकिये के) चित लट जाओ। अपने शरीर को एकदम ढीला छोड़ दो, नुल जाओ। मन को शान्त कर दो। धीरे धीरे नाक से १० १२ गहरे श्वास लो और छोड़ दो। अब नीचे लिखी क्रिया करो।

(१) नयकार मंत्र या ॐ शान्ति का जप धीरे धीरे, अपने मन में शान्ति का भाव करते हुए करते रहो। चिन्ता और घबराहट को एकदम नुल जाओ, मंत्र के अर्थ और उसको अनुभव करने की तरफ चित्त को लगाये रहो। जप में इतने लीन रहो कि सब कुछ नुल जाओ। ऐसा करते समय यदि निद्रा आजाये तो अच्छा है, क्योंकि इससे मन में शान्ति के भाव जम जाते हैं, और मस्तिष्क शांत और प्रफुल्ल हो जाता है।

इसी प्रकार जप करते हुए रात को

साना चाहिये क्योंकि सोते समय जो अन्तिम विचार मन में रह जाते हैं, उनका जीवन पर बड़ा प्रभाव गिरता है।

(२) इसी प्रकार शान्त लेटे हुए धीरे धीरे गहरा भ्यास लो और छोड़ दो। दस तीस बार ऐसा करो, इससे शान्त तुम ताजगी पहुँचती है। अगर आँखें खोल कर अपने पैरों के अंगूठों पर दृष्टि जमा दो और मन में अपने जीवन की ऐसी किसी घटना का विचार करो जिससे तुम्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ हो। इस आनन्द में लीन रहो। इस प्रकार करने से चिन्ता और दुःख के विचार आनन्द में बदल जावेंगे।

जब कभी भी आत्म-ग्लानि, घबराहट, बैचेनी मालूम होती हो तो चाहें जिस अवस्था और स्थान पर हो, धीरे धीरे गहरा भ्यास लेते हुए अपने आपको आनन्द, आरोग्य, उत्साह की सूचना देते रहना चाहिये।

(३) ऐसी अशान्त और चिन्तित अवस्था में होने पर आत्म गुणों का, ससार की नश्यतता

और गहरा भावनाओं का चिन्तन करने से भी आत्मा को शान्ति प्राप्त होती है ।

(४) जिस वस्तु का अभाव तुम्हारी चिन्ता का कारण हो, उस वस्तु से हीन और दुःखी मनुष्य का चित्र अपनी आँखों के सामने लाओ और उसकी अपेक्षा अपनी जो अच्छी अवस्था है, उसका विचार करो । इस प्रकार विचार करने से मनुष्य अपने अभाव के दुःख को भुला कर आनन्दमय हो सकता है ।

(५) सदा किसी न किसी काम में लगे रहना, सज्जनों की संगति का लाभ लेना, धर्मचर्चा करना, पुस्तकें पढ़ना आदि से भी मन से चिन्ता और भय आदि के दुःखदायक विचार भुलाये जा सकते हैं ।

ॐ (१) समार म सब अनिय है; (२) मृत्यु से कोई किसी को बचा नहीं सकता (३) इस समार के बन्ध से कब छूटूँगा ? (४) आत्मा अकली ही है (५) कोई किसी का नहीं है (६) शरीर मल मूत्र आदि से दुर्गन्धमय है (७) राग द्वेष आत्मा के बन्धक हैं (८) राग द्वेष का त्याग आत्मा की मुक्ति है (९) तप समय से आत्मा ब्रह्म से मुक्त होती है (१०) शोक का विचार, (११) सम्पत्त्य दुःख है और (१२) धर्म प्राप्ति कठिन है ।

साधन का क्रम

आत्मचिन्तन के लिये जो साधन पिछले पृष्ठा में दिये गये हैं, उनको नियम से करने का क्रम अपने लिये बना लेना चाहिये। यहाँ दो क्रम दिये जाते हैं, इनमें से किसी को भी अपनी सुविधा के अनुसार नियत कर आत्मचिन्तन कर सकते हैं। इनके सिवाय भी चाहें तो अपने अनुकूल भी कोई क्रम बना कर आत्मचिन्तन कर सकते हैं।

(१) आत्मचिन्तन करने के लिये सबसे अच्छा समय प्रातः काल का है, इस समय सामायिक करके पुस्तक का सारा क्रम कर लेना चाहिये।

| | |
|------------------|----------|
| ध्यान | १० मिनिट |
| ध्यानि उच्चार | २ मिनिट |
| जप (अनुपूर्वी) | ५ मिनिट |

अध्यात्म-पाठ २० मिनिट (सप्त
सूक्ति, स्तोत्र, मेरी भाषना, एक-दो गायन और
विशेष मंत्र)

सामायिक का उपकाल स्याध्याय में यिताना
चाहिये ।

रात्रि को—शान्ति के ध्यान से मन को
शांत एकाग्र करके अपने सारे दिन के व्यवहार
पर विचार (आत्म निरीक्षण) करना चाहिये ।
गुण का ध्यान करके मंत्रजप करके सो जाना
चाहिये ।

(२) प्रातः -ध्यान, जप, मेरी भाषना और विशेष मंत्र ।
रात्रि—आत्मनिरीक्षण, ध्यान और जप ।

